संतबानी पुस्तक-माला पर दो शब्द

संतबानी पुस्तक-माला के छापने का अभिप्राय जगत-प्रसिद्ध महात्माओं की [बा]नी और उपदेश को जिनका लोप होता जाता है बचा लेने का है। जितनी बानियाँ [हम]ने छापी हैं उनमें से विशेष तो पहिले कहीं छपी ही नहीं थीं और जो छपी भी थीं सो [प्रा]य: ऐसे छिन्न भिन्न और बेजोड़ रूप में या क्षेपक और त्रुटि से भरी हुई कि उन से [पू]रा लाभ नहीं उठाया जा सकता था।

हमने देश देशान्तर से बड़े परिश्रम और व्यय के साथ हस्तलिखित दुर्लभ [ग्र]न्थ या फुटकल शब्द जहाँ तक मिल सके असल या नक़ल कराके मँगवाये। भरसक [तो] पूरे ग्रन्थ छापे गये हैं और फुटकल शब्दों की हालत में सर्व साधारण के उपकारक पद चुन लिये हैं, प्राय: कोई पुस्तक बिना दो लिपियों का मुकाबिला किये और ठीक रीति से शोधे नहीं छापी गई हैं, और कठिन और अनूठे शब्दों के अर्थ और संकेत फुट नोट में दे दिये गये हैं। जिन महात्मा की बानी है उनका जीवन चरित्र भी साथ ही में छापा गया है। और जिन भक्तों और महापुरुषों के नाम किसी बानी में आये हैं उनके वृतान्त और कौतुक संक्षेप से फुट नोट में लिख दिये गये हैं।

दो अन्तिम पुस्तकें इस पुस्तक-माला की अर्थात संतबानी संग्रह भाग १ (साखी) और भाग २ (शब्द) छप चुकी हैं, जिनका नमूना देखकर महामहोपाध्याय श्री पंडित सुधाकर द्विवेदी वैकुंठ-वासी ने गद्गद होकर कहा था—"न भूतो न भविष्यति"।

एक अनूठी और अद्वितीय पुस्तक महात्माओं और बुद्धिमानों के बचनों की "लोक परलोक हितकारी" नाम की गद्य में सन् १९१६ में छपी है, जिसके विषय में श्रीमान् महाराजा काशी नरेश ने लिखा है—"वह उपकारी शिक्षाओं का अचरज संग्रह है; जो सोने के तोल सस्ता है।"

पाठक महाशयों की सेवा में प्रार्थना है कि इस पुस्तकमाला के जो दोष उनकी दृष्टि में आवें उन्हें हमको कृपा करके लिख भेजें जिमसे वह दूसरे छापे में दूर कर दिये जावें।

हिन्दी में और भी अनूठी पुस्तकें छपी हैं जिनमें प्रेम कहानियों के द्वारा शिक्षा दी गई हैं। उनका नाम और दाम सूची में छपा है। कुल पुस्तकों की सूची नीचे लि[खे] — [illegible] पुस्तक के तीसरे और चौथे पृष्ठ पर देखें।

मनेजर—संतबानी पुस्तकमाला कार्यालय

बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद—२

कबीर साखी-संग्रह

[भाग १ तथा २]

जिसमें

कबीर साहिब की अति कोमल और
मनोहर साखियाँ कई पुस्तकों और
फुटकर लिपियों से चुनकर बड़ी
शुद्धता के साथ ८४ अंगों
में छापी गई हैं।

प्रकाशक

बेलविडियर प्रिंटिंग वर्क्स,

इलाहाबाद।

सातवीं बार] सन् १९५६ ई० [मूल्य २)

Printed and Published
at The Belvedere Printing Works, Allahabad, By B. Sajjan,

सूचीपत्र अंगों का

* भाग १ *

कबीर साहिब का साखी-संग्रह

[भाग १]

—:※:—

गुरुदेव का अंग

गुरु को कीजै दंडवत, कोटि कोटि परनाम।
कीट न जानै भृङ्ग को, वह कर ले आप समान॥ १॥
जगत जनायो जेहि सकल, सो गुरु प्रगटे आय।
जिन गुरु[1] आँखि न देखिया, सो गुरु[2] दिया लखाय॥ २॥
सतगुरु सम को है सगा, साधू सम को दात।
हरि समान को हितू है, हरिजन सम को जात॥ ३॥
सतगुरु की महिमा अनँत, अनँत किया उपकार।
लोचन अनँत उघारिया, अनँत दिखावनहार॥ ४॥
जेहि खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि अरु देव।
कहै कबीर सुन साधवा, कर सतगुरु की सेव॥ ५॥
कबीर गुरु गरुआ मिला, रल[3] गया आटे लोन।
जाति पाँति कुल मिटि गया, नाम धरैगा कौन॥ ६॥
ज्ञान-प्रकासी गुरु मिला, सो जन बिसरि न जाय।
जब साहिब किरपा करी, तब गुरु मिलिया आय॥ ७॥
गुरु साहिब करि जानिये, रहिये सबद समाय।
मिले तो दँडवत बंदगी, पल पल ध्यान लगाय॥ ८॥

---

(१) गुरु के निज रूप से अभिप्राय है। (२) देहधारी रूप गुरु का। (३) मिल।

गुरु को सिर पर राखिये, चलिये आज्ञा माहिं।
कहै कबीर ता दास को, तीन लोक डर नाहिं ॥ ६ ॥
गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, का के लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोबिंद दियो बताय ॥१०॥
बलिहारी गुरु आपने, घड़ि घड़ि सौ सौ बार।
मानुष से देवता किया, करत न लागी बार ॥११॥
लाख कोस जो गुरु बसैं, दीजै सुरत पठाय।
सबद तुरी असवार ह्वै, पल पल आवै जाय ॥१२॥
जो गुरु बसैं बनारसी, सिष्य समुंदर तीर।
एक पलक बिसरै नहीं, जो गुन होय सरीर ॥१३॥
सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय।
सात समुँद की मसि करूँ, गुरु गुन लिखा न जाय ॥१४॥
बूड़ा था पर ऊबरा, गुरु की लहरि चमक।
बेड़ा देखा झाँझरा, ऊतरि भया फरक ॥१५॥
पहिले दाता सिष भया, जिन तन मन अरपा सीस।
पाछे दाता गुरु भये, जिन नाम दिया बकसीस ॥१६॥
सत्त नाम के पटतरे, देवे को कछु नाहिं।
क्या लै गुरु संतोषिये, हवस रही मन माहिं ॥१७॥
मन दीया तिन सब दिया, मन की लार[1] सरीर।
अब देवे को कछु नहीं, यों कह दास कबीर ॥१८॥
तन मन दिया तो भल किया, सिरं का जासी भार।
कबहूँ कहै कि मैं दिया, धनी सहैगा मार ॥१९॥
तन मन ता को दीजिये, जा के बिषया नाहिं।
आपा सबही डारि कै, राखै साहिब माहिं ॥२०॥

---

(१) साथ।

तन मन दिया तो क्या हुआ, निज मन दिया न जाय ।
कहै कबीर ता दास से, कैसे मन पतियाय ॥२१॥
तन मन दीया आपना, निज मन ता के संग ।
कहै कबीर निरभय भया, सुन सतगुरु परसंग ॥२२॥
निज मन तो नीचा किया, चरन कँवल की ठौर ।
कहै कबीर गुरुदेव बिन, नजर न आवै और ॥२३॥
गुरु सिकलीगर कीजिये, मनहिं मस्कला[1] देइ ।
मन का मैल छुड़ाइ कै, चित दरपन करि लेइ ॥२४॥
सिष खाँडा गुरु मस्कला, चढ़ै नाम खरसान[2] ।
सबद सहै सन्मुख रहै, तो निपजै सिष्य सुजान ॥२५॥
गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार ।
सुरति सिला पर धोइये, निकसै जोति अपार ॥२६॥
गुरु कुम्हार सिष कुंभ[3] है, गढ़ गढ़ काढ़ै खोट ।
अंतर हाथ सहार दै, बाहर बाहै[4] चोट ॥२७॥
सतगुरु महल बनाइया, प्रेम गिलावा दीन्ह ।
साहिब दरसन कारने, सबद झरोखा कीन्ह ॥२८॥
गुरु साहिब तो एक हैं, दूजा सब आकार ।
आपा मेटै गुरु भजे, तब पावै करतार ॥२९॥
ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति बिस्वास ।
गुरु सेवा तेँ पाइये, सतगुरु[5] चरन निवास ॥३०॥
गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिये अंध ।
महा दुखी संसार में, आगे जम के बंध ॥३१॥
गुरु मानुष करि जानते, चरनामृत को पानि ।
ते नर नरकै जाइँगे, जन्म जन्म ह्वै स्वान ॥३२॥

(१) सिकली करने का औजार। (२) सान। (३) घड़ा। (४) लगाता है।
(५) सत्य पुरुष।

कबीर ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर ॥३३॥
गुरु हैं बड़ गोबिंद तें, मन में देखु बिचार।
हरि सुमिरै सो वार है, गुरु सुमिरै सो पार ॥३४॥
गुरु सीढ़ी तें ऊतरै, सबद बिहूना होय।
ता को काल घसीटि है, राखि सकै नहिं कोय ॥३५॥
अहं अगिन निसि दिन जरै, गुरु से चाहै मान।
ता को जम न्योता दियो, होउ हमार मिहमान ॥३६॥
गुरु से भेद जो लीजिये, सीस दीजिये दान।
बहुतक भोंदू बहि गये, राखि जीव अभिमान ॥३७॥
गुरु समान दाता नहीं, जाचक सिष्य समान।
तीन लोक की सम्पदा[1], सो गुरु दीन्हा दान ॥३८॥
जम गरजे बल बाघ के, कहै कबीर पुकार।
गुरु किरपा ना होत जो, तौ जम खाता फार ॥३९॥
गुरु पारस गुरु परस है, चंदन बास सुबास।
सतगुरु पारस जीव को, दीन्हा मुक्ति निवास ॥४०॥
अबरन बरन अमूर्त जो, कहो ताहि किन पेख।
गुरू दया तें पावइ, सुरत निरत करि देख ॥४१॥
पंडित पढ़ि गुनि पचि मुए, गुरु बिन मिलै न ज्ञान।
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है, सत्त सबद परमान ॥४२॥
मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पुजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु बचन है, मूल सत्य सत भाव ॥४३॥
कहैं कबीर तजि भरम को, नन्हा ह्वै के पाव।
तजि[2] अहं गुरु चरन गहु, जम से बाचै जाव ॥४४॥

---

(१) दौलत। (२) तज या छोड़ कर।

तीन लोक नौ खंड में, गुरु तें बड़ा न कोइ।
करता करै न करि सकै, गुरु करै सो होइ ॥४५॥
कबिरा हरि के रूठते, गुरु के सरने जाइ।
कहै कबीर गुरु रूठते, हरि नहिं होत सहाय ॥४६॥
गुरु की आज्ञा आवई, गुरु की आज्ञा जाय।
कहै कबीर सो संत है, आवा गवन नसाय ॥४७॥
थापन[1] पाई थिर भया, सतगुरु दीन्ही धीर।
कबीर हीरा बनिजिया[2], मानसरोवर तीर ॥४८॥
कबीर हीरा बनिजिया, हिरदै प्रगटी खानि।
सत्त पुरुष किरपा करी, सतगुरु मिले सुजान ॥४९॥
निस्चय निधी मिलाय तत, सतगुरु साहस धीर।
निपजी में साझी घना, बाँटनहार कबीर ॥५०॥
कबीर बादल प्रेम को, हम पर बरस्यो आय।
अंतर भींजी आतमा, हरो भयो बनराय ॥५१॥
सतगुरु के सदके[3] किया, दिल अपने को साच।
कलजुग हम से लरि परा, मुहकम[4] मेरा बाँच ॥५२॥
साचे गुरु की पच्छ में, मन को दे ठहराय।
चंचल तें निःचल भया, नहिं आवै नहिं जाय ॥५३॥
भली भई जो गुरु मिले, नातर होती हान।
दीपक जोति पतंग ज्यों, परता आय निदान ॥५४॥
भली भई जो गुरु मिले, जा तें पाया ज्ञान।
घटही माहिं चबूतरा, घटही माहिं दिवान ॥५५॥
गुरू मिला तब जानिये, मिटै मोह तन ताप।
हर्ष-सोक व्यापै नहीं, तब गुरु आपै आप ॥५६॥

---

(१) स्थिति यानी ठहराव। (२) बनिज किया या लादा। (३) न्योछावर।
(४) परवाना।

गुरू तुम्हारा कहाँ है, चेला कहाँ रहाय।
क्यों करिके मिलना भया, क्यों बिछुड़े आवे जाय ॥५७॥
गुरू हमारा गगन में, चेला है चित माहिं।
सुरत सबद मेला भया, बिछुड़त कबहूँ नाहिं ॥५८॥
बस्तु कहीं ढूँढ़ै कहीं, केहि बिधि आवै हाथ।
कहै कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजे साथ ॥५९॥
भेदी लीन्हा साथ कर, दीन्ही बस्तु लखाय।
कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुँचा जाय ॥६०॥
जल परमाने माछरी, कुल परभावैं बुद्धि।
जा को जैसा गुरु मिलै, ता को तैसी सुद्धि ॥६१॥
यह तन बिष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलैं, तौ भी सस्ता जान ॥६२॥
चेतन चौकी बैठ करि, सतगुरु दीन्ही धीर।
निरभय ह्वै निःसंक भजु, केवल नाम कबीर ॥६३॥
बहे बहाये जात थे, लोक बेद के साथ।
पैंड़े में सतगुरु मिले, दीपक दीन्हा हाथ ॥६४॥
दीपक दीन्हा तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहना[1], बहुरि न आवे हट्ट[2] ॥६५॥
चौपड़ माड़ी चौहटे, सारी[3] किया सरीर।
सतगुरु दाँव बताइया, खेलै दास कबीर ॥६६॥
ऐसा कोई ना मिला, सत्त नाम का मीत।
तन मन सौंपै मिरग ज्यों, सुनै बधिक का गीत ॥६७॥
ऐसे तो सतगुरु मिले, जिन से रहिये लाग।
सब ही जग सीतल भया, जब मिटी आपनी आग ॥६८॥

---

(१) खरीदारी। (२) बाज़ार। (३) पासा।

सतगुरु हम से रीझि के, एक कहा परसंग।
बरसा बादल प्रेम का, भींजि गया सब अंग ॥६९॥
सतगुरु के उपदेस का, सुनियो एक बिचार।
जो सतगुरु मिलता नहीं, जाता जम के द्वार ॥७०॥
जम द्वारे पर दूत सब, करते खींचा तान।
तिन तें कबहुँ न छूटता, फिरता चारो खानि ॥७१॥
चार खानि में भरमता, कबहुं न लहता पार।
सो तो फेरा मिटि गया, सतगुरु के उपकार ॥७२॥
जरा[1] मीच[2] ब्यापै नहीं, मुवा न सुनिये कोय।
चलु कबीर वा देस में, जहँ बैदा सतगुरु होय ॥७३॥
काल के माथे पाँव दे, सतगुरु के उपदेस।
साहिब अंक[3] पसारिया, लै चला अपने देस ॥७४॥
सतगुरु साचा सूरमा, सबद जो बाहा[4] एक।
लागत ही भय मिटि गया, पड़ा कलेजे छेक ॥७५॥
सतगरु साचा सूरमा, नख सिख मारा पूर।
बाहर घाव न दीसई, भीतर चकनाचूर ॥७६॥
सतगुरु सबद कमान करि, बाहन लागा तीर।
एक जो बाहा प्रेम से, भीतर बिधा सरीर ॥७७॥
सतगुरु बाहा बान भरि, धर कर सूधी मूठ।
अंग उघारे लागिया, गया धुवाँ सा फूट ॥७८॥
सतगुरु मेरा सूरमा, वेधा सकल सरीर।
बान धुवाँ सा फूटिया, क्यों जीवे दास कबीर ॥७९॥
सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निज ठौर।
नाम अकेला रहि गया, चित्त न आवै और ॥८०॥

---

(१) वृद्ध अवस्था। (२) मौत। (३) अँकवार यानी दोनों हाथ। (४) चलाया

कर कमान सर साधि के, खैंचि जो मारा माहिं।
भीतर बिंधै सो मरि रहै, जिवै पै जीवै नाहिं ॥८१॥

जबही मारा खैंचि के, तब मैं मूआ जानि।
लगी चोट जो सबद की, गई कलेजे छानि ॥८२॥

सतगुरु मारा बान भरि, डोला नाहिं सरीर।
कहु चुम्बक क्या करि सकै, सुख लागे वोहि तीर ॥८३॥

सतगुरु मारा तान कर, सबद सुरंगी बान।
मेरा मारा फिर जिये, तो हाथ न गहूँ कमान ॥८४॥

ज्ञान कमान औ लव गुना[1], तन तरकस मन तीर।
भलका[2] बहै तत सार का, मारा हदफ[3] कबीर ॥८५॥

कड़ी कमान कबीर की, धरी रहै चौगान।
केते जोधा पचि गये, खींचैं संत सुजान ॥८६॥

लागी गाँसी सुख भया, मरै न जीवै कोय।
कहै कबीर सो अमर भे, जीवत मिर्तक होय ॥८७॥

हँसै न बोलै उनमुनी, चंचल मेला मार[4]।
कबीर अंतर बेधिया, सतगुरु का हथियार ॥८८॥

गूँगा हूआ बावरा, बहिरा हूआ कान।
पाँयन से पँगुला हुआ, सतगुरु मारा बान ॥८९॥

सतगुरु मारा बान भरि, टूटि गया सब जेब[5]।
कहुँ आपा कहुँ आपदा, तसबी कहूँ कितेब ॥९०॥

सतगुरु मारा प्रेम से, रही कटारी टूट।
वैसी अनी न सालही, जैसी सालै मूठ[6] ॥९१॥

---

(१) कमान की डोर। (२) गाँसी। (३) निशाना। (४) चचल यानी मन को मार के हटा दिया और उनमुनी दशा प्राप्त हुई। (५) ज़ेवाइश, साज़ सामान। (६) अनी अर्थात नोक कटारी की जो टूट कर हृदय मे रह गई वह इतना कष्ट नहीं देती है जितना मूठ का बाहर रह जाना, यानी प्रेम कटारी समूची क्यों न घुस गई।

सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निज ठौर ।
अलख नाम में रमि रहा, चित्त न आवै और ॥९२॥

मान बड़ाई ऊरमी[1], ये जग का व्यवहार ।
दास गरीबी बंदगी, सतगुरु का उपकार ॥९३॥

दिल ही में दीदार है, बाद बहै संसार ।
सतगुरु सबद का मस्कला, मोहिँ दिखावनहार ॥९४॥

दीसे है सो बिनसिहै, नाम धरे सो जाय ।
कबीर सोई तत्त गहु, जो सतगुरु दियो बताय ॥९५॥

कुदरत पाई खबर से, सतगुरु दियो बताय ।
भँवरा बिलम्यो कमल से, अब कैसे उड़ि जाय ॥९६॥

सत्त नाम छोड़ूँ नहीं, सतगुरु सीख दिया ।
अबिनासी को परसि के, आतम अमर भया ॥९७॥

सतगुरु तो ऐसा मिला, ताते लोह लुहार ।
कसनी दे कंचन किया, ताय लिया तत सार ॥९८॥

सतगुरु मिलि निरभय भया, रही न दूजी आस ।
जाय समाना सबद में, सत्त नाम बिस्वास ॥९९॥

कबीर गुरु ने गम कही, भेद दिया अर्थाय ।
सुरत कँवल के अंतरे, निराधार पद पाय ॥१००॥

कुमति कींच चेला भरा, गुरू ज्ञान जल होय ।
जनम जनम का मोरचा, पल में डारै धोय ॥१०१॥

घर में घर दिखलाय दे, सो गुरु संत सुजान ।
पंच सबद धुनकार धुन, बाजै गगन निसान ॥१०२॥

जाय मिल्यो परिवार में, सुख सागर के तीर ।
बरन पलटि हंसा किया, सतगुरु सत्त कबीर ॥१०३॥

---

(१) तरंग (मन की)।

साचे गुरु के पच्छ में, मन को दे ठहराय।
चंचल तें निःचल भया, नहिं आवै नहिं जाय ॥१०४॥
गुरु सिकलीगर कीजिये, ज्ञान मस्कला देइ।
मन का मैल छुड़ाइ के, चित दरपन करि लेइ ॥१०५॥
गुरू बतावै साध को, साध कहै गुरु पूज।
अरस परस के खेल में, भई अगम की सूझ ॥१०६॥
चित चोखा मन निर्मला, बुधि उत्तम मति धीर।
सो धोखा बिच क्यों रहै, जेहि सतगुरु मिलै कबीर ॥१०७॥
चित चोखा मन निर्मला, दयावंत गम्भीर।
सोई उहवाँ बिचरई, जेहि सतगुरु मिलै कबीर ॥१०८॥
सतगुरु सत्त कबीर है, संकट पड़ा हजीर[1]।
साथ जोरि बिनती करूँ, भवसागर के तीर ॥१०९॥
कोटिन चंदा ऊगवैं, सूरज कोटि हजार।
सतगुरु मिलिया बाहरे, दीसत घोर अँधार ॥११०॥
सतगुरु मोहिं निवाजिया, दीन्हा अम्मर बोल।
सीतल छाया सुगम फल, हंसा करै कलोल ॥१११॥
ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति बिस्वास।
सतगुरु मिलि एकै भया, रही न दूजी आस ॥११२॥
सतगुरु पारस के सिला, देखो सोच बिचार।
आई परोसिन लै चली, दीयो दिया सँवार ॥११३॥
जीव अधम औ कुटिल है, कबहूँ नहिं पतियाय।
ता को औगन मेटि कै, सतगुरु होत सहाय ॥११४॥
पहिले बुरा कमाइ के, बाँधी बिष की पोट।
कोटि कर्म पल में कटे, जब आया गुरु की ओट ॥११५॥

(१) भारी।

सतगुरु बड़े सराफ हैं, परखैं खरा अरु खोट।
भवसागर तें निकारि कै, राखैं अपनी ओट ॥११६॥
भवसागर जल विष भरा, मन नहिं बाँधै धीर।
सबल सनेही गुरु मिला, उतरा पार कबीर ॥११७॥
सतगुरु सबद जहाज हैं, कोइ कोइ पावै भेद।
समुँद बुंद एकै भया, किस का करूँ निषेध ॥११८॥
सतगुरु बड़े जहाज हैं, जो कोइ बैठे आय।
पार उतारैं और को, अपनो पारस लाय ॥११९॥
बिन सतगुरु बाचै नहीं, फिरि बूड़ै भव माहिं।
भवसागर के त्रास में, सतगुरु पकरैं बाँहि ॥१२०॥
सतगुरु मिला तो क्या भया, जो मन पाड़ी भोल[1]।
पास बस्र ढाँकै नहीं, क्या करै बपुरी चोल[2] ॥१२१॥
जग मूआ बिषधर[3] धरे, कहै कबीर बिचार।
जो सतगुरु को पाइया, सो जन उतरै पार ॥१२२॥

॥ सोरठा ॥

बिन सतगुरु उपदेस, सुर नर मुनि नहिं निस्तरे।
ब्रह्मा विष्णु महेस, और सकल जिव को गनै ॥१२३॥

॥ साखी ॥

केतिक पढ़ि गुनि पचि मुवा, जोग जज्ञ तप लाय।
बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥१२४॥

॥ सोरठा ॥

करहु छोड़ कुल लाज, जो सतगुरु उपदेस है।
होय तवै जिव काज, निःचय कै परतीत करु ॥१२५॥

(१) मन में भूल पड़ी। (२) बिचारी चोली। (३) साँप, अर्थात् मन और माया।

॥ साखी ॥

अच्छर आदी जगत में, जा कर सब बिस्तार।
सतगुरु दया से पाइये, सत्त नाम निज सार ॥१२६॥

॥ सोरठा ॥

सतगुरु खोजो संत, जीव काज जो चाहहू।
मेटौ भव को अंक, आवागवन निवारहू ॥१२७॥
बिनवै दोउ कर जोर, सतगुरु बंदी-छोर हैं।
पावै नाम कि डोर, जरा मरन भवजल मिटै ॥१२८॥
सत्त नाम निज सोय, जो सतगुरु दाया करैं।
और झूठ सब होय, काहे को भरमत फिरै ॥१२९॥

॥ साखी ॥

सतगुरु सरन न आवहीं, फिरि फिरि होय अकाज।
जीव खोय सब जाहिंगे, काल तिहूँ पुर राज ॥१३०॥

॥ सोरठा ॥

जो सत नाम समाय, सतगुरु की परतीत कर।
जम कै अमल मिटाय, हंस जाय सतलोक कहँ ॥१३१॥
तत[1] दरसी जो होय, सो सत सार बिचारई।
पावै तत्त बिलोय, सतगुरु कै चेला सोइ ॥१३२॥
जग भवसागर माहिं, कहु कैसे बूड़त तरै।
गहु सतगुरु की बाहिं, जो जल थल रच्छा करैं ॥१३३॥
निज मत सतगुरु पास, जाहि पाय सब सुधि मिलै।
जग तें रहै उदास, ता कहँ क्यों नहिं खोजिये ॥१३४॥

॥ साखी ॥

यह सतगुरु उपदेस है, जो मानै परतीत।
करम भरम सब त्यागि कै, चलै सो भवजल जीति ॥१३५॥

---

(१) तत्व अर्थात् सार वस्तु।

सतगुरु तो सत भाव है, जो अस भेद बताय ।
धन्य सिष्य धन भाग तेहिं, जो ऐसी सुधि पाय ॥१३६॥
जन कबीर बंदन करै, केहि बिधि कीजे सेव ।
वार पार की गम नहीं, नमो नमो गुरु देव ॥१३७॥

———

झूठे गुरू का अंग

गुरू मिला न सिष मिला, लालच खेला दाव ।
दोऊ बूड़े धार में, चढ़ि पाथर की नाव ॥१॥
जा का गुरु है आँधरा, चेला निपट निरंध[1] ।
अंधे अंधा ठेलिया, दोऊ कूप परंत ॥२॥
जानंता[2] बूझा नहीं, बूझि किया नहिं गौन ।
अंधे को अंधा मिला, राह बतावै कौन ॥३॥
कबीर पूरे गुरु बिना, पूरा सिष्य न होय ।
गुरु लोभी सिष लालची, दूनी दाझन[3] होय ॥४॥
पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख ।
स्वाँग जती का पहिरि के, घर घर माँगै भीख ॥५॥
गुरू गुरू में भेद है, गुरू गुरू में भाव ।
सोई गुरु नित बंदिये, (जो) सबद बतावै दाव ॥६॥
कनफूका गुरु हद्द का, बेहद का गुरु और ।
बेहद का गुरु जब मिलै, (तब) लहै ठिकाना ठौर ॥७
गुरू किया है देह का, सतगुरु चीन्हा नाहिं ।
भवसागर के जाल में, फिरि फिरि गोता खाहिं ॥८
जा गुरु तें भ्रम ना मिटै, भ्रांति[4] न जिव की जाय ।
गुरु तो ऐसा चाहिये, देवै सबद लखाय ॥

(१) जिसकी आँखें बिल्कुल बंद हैं। (२) जानकार, भेदी। (३) तपन। (४) भट

बंधे को बंधा मिलै, छूटै कौन उपाय।
कर सेवा निरबंध की, पल में लेत छुड़ाय ॥१०॥
झूठे गुरु के पच्छ को, तजत न कीजै बार।
द्वार न पावै सबद का, भटकै बारंबार ॥११॥
कबीर गुरु को गम नहीं, पाहन दिया बताय।
सिष सोधे बिन सेइया, पार न पहुँचै जाय ॥१२॥
बेड़े चढ़िया झाँझरे, भवसागर के माहिं।
जो छाड़ै तो बाचिहै, नातर बूड़ै माहिं ॥१३॥
बात बनाई जग ठगा, मन परमोधा नाहिं।
कहै कबीर मन लै गया, लख चौरासी माहिं ॥१४॥
नीर पियावत क्या फिरै, घर घर सायर बारि[1]।
तृषावंत जो होइगा, पीवैगा झख मारि ॥१५॥
गुरुआ तो सस्ता भया, पैसा केर पचास।
राम नाम को बेचि के, करै सिष्य की आस ॥१६॥
रासि[2] पराई राखता, घर का खाया खेत।
औरन को परमोधता, मुख में परि गई रेत ॥१७॥
गुरुआ तो घर घर फिरै, दीच्छा हमरी लेहु।
कै बूड़ौ कै ऊछलौ, टका परदनी[3] देहु ॥१८॥
जा का गुरु ग्रेही[4] अहै, चेला ग्रेही होय।
कीच कीच को धोवते, दाग न छूटै कोय ॥१९॥
गुरू नाम है ज्ञान का, सिष्य सीख ले सोइ।
ज्ञान मरजाद जाने बिना, गुरु अरु सिष्य न कोइ ॥२०॥
गुरु पूरा सिष सूरा, बाग मोरि रन पैठ।
सत्त सुकृत को चीन्हि के, एक तख्त चढ़ि बैठ ॥२१॥

(१) पानी। (२) खलियान। (३) प्रदान=बखशिश। (४) संसारी।

जा के हिरदे गुरु नहीं, सिप साखा की भूख।
ते नर ऐसा सूखसी, ज्यों बन दाझा रूख ॥२२॥
सिप साखा बहुते किये, सतगुरु किया न मित्त।
चाले थे सतलोक को, बीचहि अटका चित्त ॥२३॥

गुरुमुख का अंग

गुरुमुख गुरु चितवत रहै, जैसे मनी भुवंग।
कहै कबीर बिसरै नहीं, यह गुरुमुख को अंग ॥ १ ॥
गुरुमुख गुरु चितवत रहै, जैसे साह दिवान।
और कबीर नहिं देखता, है वाही को ध्यान ॥ २ ॥
गुरुमुख गुरु आज्ञा चलै, छोड़ि देइ सब काम।
कहै कबीर गुरुदेव को, तुरत करै परनाम ॥ ३ ॥
उलटे सुलटे बचन कै, सिष्य न मानै दुक्ख।
कहै कबीर संसार में, सो कहिये गुरुमुक्ख ॥ ४ ॥

मनमुख का अंग

सेवक-मुखी कहावई, सेवा में दृढ़ नाहिं।
कहै कबीर सो सेवका, लख चौरासी जाहिं ॥ १ ॥
फल कारन सेवा करै, तजै न मन से काम।
कहै कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुना दाम ॥ २ ॥
सतगुरु सबद उलंघि कै, जो सेवक कहिं जाय;
जहाँ जाय तहँ काल है, कह कबीर समुझाय ॥ ३ ॥
गुरू बिचारा क्या करै, जो सिष्ये माहीं चूक।
भावै ज्यौं परमोधिये, बाँस बजाई फूंक ॥ ४ ॥
मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागैगा मोर ॥ ५ ॥

तेरा तुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो मोर।
मेरा मुझ को सौंपते, जी धड़केगा तोर ॥ ६ ॥

॥ चौपाई ॥

गुरु से करै कपट चतुराई। सो हंसा भव भरमै आई ॥ ७ ॥
जो सिष गुरु की निंदा करई। सूकर स्वान गर्भ में परई ॥ ८ ॥

निगुरा का अंग

गुरु बिनु माला फेरता, गुरु बिनु करता दान।
गुरु बिनु सब निस्फल गया, बूझौ बेद पुरान ॥ १ ॥
जो निगुरा सुमिरन करै, दिन में सौ सौ बार।
नगर नायका सत करै, जरै कौन की लार[1] ॥ २ ॥
गर्भ जोगेसर गुरु मिला, लागा हरि की सेव[2]।
कहै कबीर बैकुंठ से, फेर दिया सुकदेव ॥ ३ ॥
जनक बिदेही गुरु किया, लागा हरि की सेव।
कहै कबीर बैकुंठ में, उलटि मिला सुकदेव ॥ ४ ॥
पूरे को पूरा मिलै, पड़ै सो पूरा दाव।
निगुरा तो ऊभट[3] चलै, जब तब करै कुदाव[4] ॥ ५ ॥
जो कामिनि परदे रहै, सुनै न गुरु मुख बात।
होइ जगत में कूकरी, फिरै उघारे गात ॥ ६ ॥
कबीर गुरु की भक्ति बिनु, नारि कूकरी होय।
गली गली भूँसत फिरै, टूक न डारै कोय ॥ ७ ॥
कबीर गुरु की भक्ति बिनु, राजा बिरखभ होय।
माटी लदै कुम्हार की, घास न डारै कोय ॥ ८ ॥

---

(१) शहर की कसबी अगर सती होने का ढोंग रचै तो किस पुरुष के सा[थ] जलै। (२) कहते हैं कि सुकदेव जी माता के गर्भ ही मे कई बरस तक रह-कर भगव[त] भजन करते रहे पर स्वर्ग में जगह पाने योग्य नहीं समझे गये जब तक कि राजा जन[क] को गुरु धारन नहीं किया। (३) कुराह। (४) कूद फाँद।

चौंसठ दीवा[1] जोइ के, चौदह चंदा[2] माहिं।
तेहि घर किस का चाँदना, जेहि घर सतगुरु नाहिं ॥ ९ ॥
निसि अँधियारी कारने, चौरासी लख चंद।
गुरु बिन एते उदय ह्वै, तहू सुदृष्टिहि मंद ॥ १० ॥
गगन मँडल के बीच में, तहवाँ झलकै नूर।
निगुरा महल न पावई, पहुँचैगा गुरु पूर ॥ ११ ॥

गुरु शिष्य खोज का अंग

ऐसा कोई ना मिला, हम को दे उपदेस।
भवसागर में बूड़ता, कर गहि काढ़ै केस ॥ १ ॥
ऐसा कोई ना मिला, जा से रहिये लाग।
सब जग जलता देखिया, अपनी अपनी आग ॥ २ ॥
ऐसा कोई ना मिला, घर दे अपन जराय।
पाँचो लरिका पटकि के, रहै नाम लौ लाय ॥ ३ ॥
हम घर जारा आपना, लूका लीन्हा हाथ।
वाहू का घर फूँक दूँ, जो चलै हमारे साथ ॥ ४ ॥
ऐसा कोई ना मिला, समुझै सैन सुजान।
ढोल बाजता ना सुनै, सुरति-बिहूना कान ॥ ५ ॥
ऐसा कोई ना मिला, हम को दे पहिचान।
अपना करि किरपा करै, ले उतार मैदान ॥ ६ ॥
ऐसा कोई ना मिला, जा से कहौं दुख रोय।
जा से कहिये भेद की, सो फिर बैरी होय ॥ ७ ॥
ऐसा कोई ना मिला, सब बिधि देइ बताय।
कवन मँडल में पुरुष है, जाहि रटौं लौ लाय ॥ ८ ॥

---

(१) चौंसठ जोगिनी की कला। (२) चौदह विद्या का प्रकाश।

हम देखत जग जात है, जग देखत हम जाहिं।
ऐसा कोई ना मिला, पकरि छुड़ावै बाहिं ॥९॥
जैसा ढूँढ़त मैं फिरौं, तैसा मिला न कोय।
ततबेता तिरगुन रहित, निरगुन से रत होय ॥१०॥
सारा सूरा बहु मिले, घायल मिला न कोय।
घायल को घायल मिले, गुरु भक्ती दृढ़ होय ॥११॥
प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरौं, प्रेमी मिलै न कोय।
प्रेमी से प्रेमी मिलै, बिष से अमृत होय ॥१२॥
सिष तो ऐसा चाहिये, गुरु को सब कछु देय।
गुरु तो ऐसा चाहिये, सिष से कछू न लेय ॥१३॥
सर्पहिँ दूध पियाइये, सोई बिष ह्वै जाय।
ऐसा कोई ना मिला, आपेही बिष खाय[1] ॥१४॥
नादी बिन्दी बहु मिले, करत कलेजे छेद।
कोइ तख्त तरे का ना मिला, जा से पूछौं भेद ॥१५॥
तख्त तरे की सो कहै, तख्त तरे का होय।
मंझ महल की को कहै, बाँका परदा सोय ॥१६॥
मंझ महल की गुरु कहै, देखा सब घर बार।
कूँची दीन्ही हाथ में, परदा दिया उघार ॥१७॥
बाँका परदा खोलि के, सन्मुख ले दीदार।
बाल सनेही साँइयाँ, आदि अंत का यार ॥१८॥
पुहुपन केरी बास ज्यों, ब्यापि रहा सब ठाहिं।
बाहर कबहुँ न पाइये, पावै संतों माहिं ॥१९॥
बिरछा पूछै बीज को, बीज बृच्छ के माहिं।
जीव जो ढूँढ़ै ब्रह्म को, ब्रह्म जीव के पाहिं ॥२०॥

(१) अपने शिष्य के विकारों को खींच ले।

डाल जो ढूँढ़ै मूल को, मूल डाल के माहिं।
आप आप को सब चलै, कोइ मिलै मूल से नाहिं ॥२१॥
मूल कबीरा गहि चढ़ै, फल खाये भरि पेट।
चौरासी की गम नहीं, ज्यों जाने त्यों लेट ॥२२॥
आदि हती सब आप में, सकल हती ता माहिं।
ज्यों तरवर के बीज में, डाल पात फल छाँहिं ॥२३॥
जिन ढूँढ़ा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठि।
मैं बपुरा बूड़न डरा, रहा किनारे बैठि ॥२४॥
हेरत हेरत हेरिया, रहा कबीर हिराय।
बुंद समानी समुँद में, सो कित हेरी जाय ॥२५॥
हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराय।
समुँद समाना बुंद में, सो कित हेरा जाय ॥२६॥
बुंद समानी समुँद में, यह जानै सब कोय।
समुँद समाना बुंद में, बूझै बिरला कोय ॥२७॥
एक समाना सकल में, सकल समाना ताहि।
कबीर समाना बूझ में, तहाँ दूसरा नाहिं ॥२८॥
कबीर बैद बुलाइया, जो भावै सो लेहि।
जेहि जेहि औषध गुरु मिलै, सो सो औषधि देहि ॥२९॥

सेवक और दास का अंग

सेवक सेवा में रहै, सेवक कहिये सोय।
कहै कबीर सेवा बिना, सेवक कबहुँ न होय ॥ १ ॥
सेवक सेवा में रहै, अनत कहूँ नहिं जाय।
दुख सुख सिर ऊपर सहै, कह कबीर समुझाय ॥ २ ॥

सेवक स्वामी एक मति, जो मति में मति मिलि जाय।
चतुराई रीझै नहीं, रीझै मन के भाय ॥ ३ ॥
द्वार धनी के पड़ि रहै, धक्का धनी का खाय।
कबहुँक धनी निवाजई, जो दर छाड़ि न जाय ॥ ४ ॥
कबीर गुरु सब को चहैं, गुरु को चहै न कोय।
जब लग आस सरीर की, तब लग दास न होय ॥ ५ ॥
सेवक सेवा में रहै, सेव करै दिन रात।
कहै कबीर कुसेवका, सन्मुख ना ठहरात ॥ ६ ॥
निरबंधन बंधा रहै, बंधा निरबँध होय।
करम करै करता नहीं, दास कहावै सोय ॥ ७ ॥
गुरु समरथ सिर पर खड़े, कहा कमी तोहि दास।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करैं, मुक्ति न छाड़ै पास ॥ ८ ॥
दास दुखी तो हरि दुखी, आदि अंत तिहुँ काल।
पलक एक में प्रगट ह्वै, छिन में करै निहाल ॥ ९ ॥
दात धनी याचै[1] नहीं, सेव करै दिन रात।
कहै कबीर ता सेवकहिं, काल करै नहिं घात ॥१०॥
सब कछु गुरु के पास है, पइये अपने भाग।
सेवक मन से प्यार है, निसु दिन चरनन लाग ॥११॥
सेवक कुत्ता गुरू का, मोतिया वा का नाँव।
डोरी लागी प्रेम की, जित खैंचै तित जाव ॥१२॥
दुर दुर करैं तो बाहिरे, तू तू करैं तो जाय।
ज्यों गुरु राखैं त्यों रहै, जो देवैं सो खाय ॥१३॥
दासातन हिरदे नहीं, नाम धरावै दास।
पानी के पीये बिना, कैसे मिटै पियास ॥१४॥

---

(१) माँगै।

भुक्ति मुक्ति माँगौं नहीं, भक्ति दान दै मोहिं।
और कोई याचौं नहीं, निसु दिन याचौं तोहिं ॥१५॥
धरती अम्बर[1] जायँगे, बिनसैंगे कैलास।
एकमेक होइ जायँगे, तब कहाँ रहैंगे दास ॥१६॥
एकम एका होन दे, बिनसन दे कैलास।
धरती अम्बर जान दे, मो में मेरे दास ॥१७॥
यह मन ता को दीजिये, जो साचा सेवक होय।
सिर ऊपर आरा सहै, तहू न दूजा जोय ॥१८॥
काजर केरी कोठरी, ऐसा यह संसार।
बलिहारी वा दास की, पैठि के निकसनहार ॥१९॥
काजर केरी कोठरी, काजर ही का कोट।
बलिहारी वा दास की, रहै नाम की ओट ॥२०॥
कबिरा पाँचो बलधिया[2], ऊजर ऊजर जाहिँ।
बलिहारी वा दास की, पकरि जो राखै बाहिँ ॥२१॥
कबीर गुरु के भावते, दूरहि तें दीसंत।
तन छीना मन अनमना[3], जग तें रूठि फिरंत ॥२२॥
अनराते सुख सोवना, राते नींद न आय।
ज्यों जल टूटे माछरी, तलफत रैन बिहाय ॥२३॥
राता राता सब कहै, अनराता कहै न कोय।
राता सोही जानिये, जा तन रक्त न होय ॥२४॥
जा घट में साईं बसै, सो क्यों छाना होय।
जतन जतन करि दाबिये, तौ उँजियारा सोय ॥२५॥
कबीर खालिक जागिया, और न जागै कोय।
कै जागै बिषया भरा, कै दास बंदगी जोय ॥२६॥

---

(१) आकाश। (२) बैल। (३) यकल।

सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परगट होय ॥२७॥

सूरमा का अंग

गगन दमामा बाजिया, पड़त निसाने चोट।
कायर भाजै कछु नहीं, सूरा भाजै खोट ॥ १ ॥
गगन दमामा बाजिया, पड़त निसाने घाव।
खेत पुकारै सूरमा, अब लड़ने का दाँव ॥ २ ॥
गगन दमामा बाजिया, हनहनिया[1] के कान।
सूरा घरै बधावना, कायर तजै परान ॥ ३ ॥
सूरा सोई सराहिये, लड़ै धनी के हेत।
पुरजा पुरजा होइ रहै, तऊ न छाड़ै खेत ॥ ४ ॥
सूरा सोई सराहिये, अंग न पहिरै लोह।
जूझै सब बँद खोलि कै, छाड़ै तन का मोह ॥ ५ ॥
खेत न छाड़ै सूरमा, जूझै दो दल माहिं।
आसा जीवन मरन की, मन में आनै नाहिं ॥ ६ ॥
अब तो जूझे ही बनै, मुड़ि चाले घर दूर।
सिर साहिब को सौंपते, सोच न कीजे सूर ॥ ७ ॥
घायल तो घूमत फिरै, राखा रहै न ओट।
जतन किये नहिं बाहुरै[2], लगी मरम की चोट ॥ ८ ॥
घायल की गति और है, औरन की गति और।
प्रेम बान हिरदे लगा, रहा कबीरा ठौर ॥ ९ ॥
सूरा सीस उतारिया, छाड़ी तन की आस।
आगे से गुरु हरखिया, आवत देखा दास ॥१०॥

---

(१) लड़ने वाला। (२) मुड़ै।

कबीर घोड़ा प्रेम का, (कोइ) चेतन चढ़ि असवार।
ज्ञान खड़ग लै काल सिर, भली मचाई मार ॥११॥
चित चेतन ताजी[1] करै, लव की करै लगाम।
सबद गुरू का ताजना[2], पहुँचै संत सुठाम ॥१२॥
कबीर तुरी पलानिये, चाबुक लीजे हाथ।
दिवस थके साईं मिलै, पीछे पड़सी रात ॥१३॥
हरि घोड़ा ब्रह्मा कड़ी, बिस्नू पीठ पलान।
चंद सूर दोय पायड़ा[3], चढ़सी संत सुजान ॥१४॥
साध सती औ सूरमा, इनकी बात अगाध।
आसा छोड़ैं देंह की, तिन में अधिका साध ॥१५॥
साध सती औ सूरमा, इन पटतर कोइ नाहिं।
अगम पंथ को पग धरैं, डिगैं तो ठाहर[4] नाहिं ॥१६॥
साध सती औ सूरमा, कबहुँ न फेरैं पीठ।
तीनों निकसि जो बाहुरैं, ता को मुँह मति दीठ ॥१७॥
साध सती औ सूरमा, ज्ञानी औ गज दंत।
एते निकसि न बाहुरैं, जो जुग जाहिं अनंत ॥१८॥
साध सती औ सूरमा, दई न मोड़ै मूँह।
ये तीनों भागे बुरे, साहिब जा की सूँह[5] ॥१९॥
सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की, कटि उँजियारा होय ॥२०॥
घड़ से सीस उतारि कै, डारि देइ ज्यौं ढेल।
कोई सूर को सोहसी, घर जाने का खेल ॥२१॥
लड़ने को सबही चले, सस्तर बाँधि अनेक।
साहिब आगे आपने, जूझैगा कोइ एक ॥२२॥

(१) घोड़ा। (२) ताजियाना = कोड़ा। (३) रकाब। (४) ठिकाना। (५) सन्मुख।

जूझैंगे तब कहैंगे, अब कछु कहा न जाय।
भीड़ पड़े मन मसखरा, लड़ै किधौं भगि जाय ॥२३॥

सूरा के मैदान में, कायर फंदा[१] आय।
ना भाजै ना लड़ि सकै, मनहीं मन पछिताय ॥२४॥

कायर बहुत पमावही[२], बड़क[३] न बोलै सूर।
सारी खलक यों जानही, केहि के मोहड़े नूर ॥२५॥

सूरा थोड़ा ही भला, सत करि रोपै पग्ग[४]।
घना मिला केहि काम का, सावन का सा बग्ग[५] ॥२६॥

रनहिं घसा जो ऊबरा, आगे गिरह निवास।
घरै बधावा बाजिया, और न दूजी आस ॥२७॥

साईं सेंति[६] न पाइये, बातन मिलै न कोय।
कबीर सौदा नाम का, सिर बिन कबहुँ न होय ॥२८॥

आप्प स्वारथी मेदिना[७], भक्ति स्वारथी दास।
कबीर नाम स्वारथी, छाड़ी तन की आस ॥२९॥

ज्यों ज्यों गुरु गुन[८] साँभलै[९], त्यों त्यों लागे तीर।
लागे से भागै नहीं, सोई साध सुधीर ॥३०॥

ऊँचा तरवर गगन को, फल निरमल अति दूर।
अनेक सयाने पचि गये, पंथहिं मूए झूर[१०] ॥३१॥

दूर भया तो क्या भया, सतगुरु मेता सोय[११]।
सिर सौंपै उन चरन में, कारज सिद्धी होय ॥३२॥

जेता तारा रैन का, एता बैरी मुज्झ।
घड़ सूली सिर कंगुरे[१२], तउ न बिसारूँ तुज्झ ॥३३॥

---

(१) फँस पडा। (२) डींग मारता है। (३) बढ़कर। (४) पैर। (५) बगीचा जो सावन के महीने यानी बरसात मे घना हो जाता है और फिर जैसे का तैसा। (६) मुफ्त। (७) पृथ्वी पानी को चाहती है। (८) धनुष की डोर या रोदा। (९) खिंचे। (१०) रास्ते ही में खाली अटक रहे। (११) जिसको पूरे सतगुरु मिले हैं। (१२) अगले समय में शत्रु को सूली पर चढ़ा कर उसका सिर काट लिया करते थे और कंगूरे पर लगा देते थे।

चौपड़ माँड़ी चौहटे, अरध उरध बाजार।
सतगुरु सेती खेलता, कबहुँ न आवै हार ॥३४॥

जो हारौं तो सेव गुरु, जो जीतौं तो दाँव।
सत्तनाम से खेलता, जो सिर जाव तो जाव ॥३५॥

खोजी जो डर बहुत है, पल पल पड़ै बिजोग।
प्रन राखत जो तन गिरै, सो तन साहिब जोग ॥३६॥

अगिनि आँच सहना सुगम, सुगम खड़ग की धार।
नेह निभावन एक रस, महा कठिन व्योहार ॥३७॥

नेह निभाये ही बनै, सोचे बनै न आन।
तन दे मन दे सीस दे, नेह न दीजे जान ॥३८॥

भाव भालका[1] सुरति सर[2], धरि धीरज कर[3] तान।
मन की मूठ जहाँ मँड़ी, चोट तहाँ हीं जान ॥३९॥

मेरे संसय कछु नहीं, लागा गुरु से हेत।
काम क्रोध से जूझना, चौड़े[4] माँड़ा खेत ॥४०॥

कायर भया न छूटि हौ, कछु सूरता समाय।
भरम भालका दूर करि, सुमिरन सील मँजाय ॥४१॥

कोने परा ना छूटि हौ, सुनु रे जीव अबूझ।
कबिरा मँड़ मैदान में, करि इंद्रिन से जूझ ॥४२॥

बाँका गढ़ बाँका मता, बाँकी गढ़ की पौल[5]।
काछि कबीरा नीकला, जम सिर घाली रौल[6] ॥४३॥

बाँकी तेग[7] कबीर की, अनी पड़ै दुइ टूक।
मारा मीर महाबली, ऐसी मूठ अचूक ॥४४॥

कबीर तोड़ा मान गढ़, पकड़े पाँचो स्वान[8]।
ज्ञान कुहाड़ा[9] कर्म बन, काटि किया मैदान ॥४५॥

---

(१) गाँसी। (२) तीर। (३) हाथ। (४) मैदान में। (५) रास्ता। (६) खलबली।
(७) तलवार। (८) पाँचो कुत्ते। (९) कुल्हाड़ा।

कबीर तोड़ा मान गढ़, मारे पाँच गनीम[1]।
सीस नवाया धनी को, साजी बड़ी मुहीम[2] ॥४६॥
कबीर पाँचो मारिये, जा मारे सुख होय।
भला भली सब कोइ कहै, बुरा न कहसी कोय ॥४७॥
ऐसी मार कबीर की, मुवा न दीसै कोय।
कह कबीर सोइ ऊबरे, धड़ पर सीस न होय ॥४८॥
सूरा सार सँभालिया, पहिरा सहज सँजोग।
ज्ञान गजंदा[3] चढ़ि चला, खेत पड़न का जोग[4] ॥४९॥
सीतलता संजोय लै, सूर चढ़े संग्राम।
अब की भाज न सरत है, सिर साहिब के काम ॥५०॥
सूरा नाम धराइ के, अब का डरपै बीर।
मँडि़ रहना मैदान में, सन्मुख सहना तीर ॥५१॥
तीर तुपक[5] से जो लड़ै, सो तो सूर न होय।
माया तजि भक्ती करै, सूर कहावै सोय ॥५२॥
कबीर सोई सूरमा, मन से माँड़ै जूझ।
पाँचो इंद्री पकरि कै, दूरि करै सब दूझ ॥५३॥
कबीर सोई सूरमा, जा के पाँचो हाथ।
जा के पाँचो बस नहीं, तेहिं गुरु संग न साथ ॥५४॥
कबीर रन में पैठि के, पीछे रहै न सूर।
साईं से सनमुख भया, रहसी सदा हजूर ॥५५॥
जाय पूछ वा घायलै, पीर दिवस निसि जागि।
बाहनहारा जानिहै, कै जानै जेहिं लागि ॥५६॥
कबीर हीरा बनिजिया, महँगे मोल अपार।
हाड़ गला माटी मिली, सिर साटे ब्योहार ॥५७॥

(१) दुशमन—काम क्रोध लोभ मोह अहंकार। (२) मुहिम या लड़ाई (३) हाथी। (४) शुभ घड़ी। (५) बंदूक।

ा न हथियार, कहा पराग ...

गो सीधे लड़ो, काहे करो कुदाव ॥५८॥

ाह[1] न पहिरई, जब रन बाजा तूर ।

ाटै धड़ लड़ै, तब जानीजे सूर ॥५९॥

तो जौहर[2] भला, घड़ी एक का काम ।

ूर का जूझना, बिन खाँड़े संग्राम ॥६०॥

क बरछी बहै, बिगसि जायगा चाम ।

ऽ मैदान में, कायर का क्या काम ॥६१॥

ऽ मैदान में, कायर का क्या काम ।

सूरा मिलै, तब पूरा संग्राम ॥६२॥

र का पंथ है, मंझि सहर अस्थान ।

ाट औघट घना, कोइ पहुँचै संत सुजान ॥६३॥

माना जब लिया, तब रन धसिया सूर ।

पा सिर ऊबरा, मुजरा धनी हजूर ॥६४॥

मया ते ऊबरा, पाया गेह निवास ।

धावा बाजिया, औ जीवन की आस ॥६५॥

। धड़ पर सीस है, सूर कहावै सोय ।

टूटै धड़ लड़ै, कमँद[3] कहावै सोय ॥६६॥

तो साचे मते, सहै जो सन्मुख धार ।

अनी चुभाइ कै, पाछे झँखै अपार ॥६७॥

कहाँ लौं जाइये, भय भारी घर दूर ।

कबीरा खेत रहु, दल आया भर पूर ॥६८॥

है लोहा झरै, टूटै जिरह[4] जँजीर ।

ी की फौज में, माँड़ा दास कबीर ॥६९॥

लड़ाई के हथियार; ढाल तलवार। (२) आत्म-घात, खुद-कुशी। (३) एक
ाका सिर गदा की मार से धड़ के भीतर घुस गया था लेकिन फिर भी वह
ता था; बिना सीस का जोधा। (४) बकतर।

ज्ञान कमाना[1] लौ गुना[2], तन तरकस मन तीर।
झलका बहता सार का, मारै हदफ[3] कबीर ॥७०॥
कठिन कमान कबीर की, पड़ी रहै मैदान।
केते जोधा पचि गये, कोइ खैंचै संत सुजान ॥७१॥
घटी बढ़ी जानै नहीं, मन में राखै जीत।
गाड़र[4] लड़ै गजंद सा, देखो उलटी रीत ॥७२॥
धुजा फरक्कै सुन्न में, बाजे अनहद तूर।
तकिया है मैदान में, पहुँचैगा कोइ सूर ॥७३॥
नाम रसायन प्रेम रस, पीवत बहुत रसाल।
कबीर पीवन कठिन है, माँगै सीस कलाल ॥७४॥
कायर भागा पीठ दै, सूर रहा रन माहिं।
पटा लिखाया गुरू पै, खरा खजीना खाहि ॥७५॥
कायर सेरी[5] ताकवै, सूरा माँड़ै[6] पाँव।
सीस जीव दोऊ दिया, पीठ न आया घाव ॥७६॥

पतिव्रता का अंग

पतिबरता को सुख घना, जा के पति है एक।
मन मैली बिभिचारिनी, ता के खसम अनेक ॥ १ ॥
पतिबरता मैली भली, काली कुचिल कुरूप।
पतिबरता के रूप पर, वारौं कोटि सरूप ॥ २ ॥
पतिबरता पति को भजे, और न आन सुहाय।
सिंह बचा जो लंघना, तौ भी घास ना खाय ॥ ३ ॥
नैनों अंतर आव तू, नैन झाँपि तोहि लेवँ।
ना मैं देखौं और को, ना तोहि देखन देवँ ॥ ४ ॥

कबीर सीप समुद्र की, रटै पियास पियास।
और बूँद को ना गहै, स्वाँति बूँद की आस ॥ ५ ॥
पपिहा का पन देखि करि, धीरज रहै न रंच।
मरते दम जल में पड़ा, तऊ ना बोरी चंच[1] ॥ ६ ॥
मैं सेवक समरत्थ का, कबहुँ ना होय अकाज।
पतिबरता नाँगी रहै, तो वाही पति को लाज ॥ ७ ॥
मैं सेवक समरत्थ का, कोई पुरबला भाग।
सोती जागी सुंदरी, साईं दिया सुहाग ॥ ८ ॥
पतिबरता के एक तू, और न दूजा कोय।
आठ पहर निरखत रहै, सोई सुहागिन होय ॥ ९ ॥
इक चित होय न पिय मिलै, पतिव्रत ना आवै।
चंचल मन चहुँ दिस फिरै, पिय कैसे पावै ॥१०॥
सुंदर तो साईं भजे, तजे आन की आस।
ताहि ना कबहूँ परिहरै, पलक ना छाड़ै पास ॥११॥
चढ़ी अखाड़े सुंदरी, माँड़ा पिउ से खेल।
दीपक जोया ज्ञान का, काम जरै ज्यों तेल ॥१२॥
सूरा के तो सिर नहीं, दाता के धन नाहिं।
पतिबरता के तन नहीं, सुरत बसै पिउ माहिं ॥१३॥
दाता के तो धन घना, सूरा के सिर बीस।
पतिबरता के तन सही, पत राखै जगदीस ॥१४॥
पतिबरता मैली भली, गले काँच की पोत।
सब सखियन में यों दिपै, ज्यों रबि ससि की जोत ॥१५॥
पतिबरता पति को भजै, पति पर धरि बिस्वास।
आन दिसा चितवै नहीं, सदा पीव की आस ॥१६॥

---

(१) चोंच।

पतिबरता बिभिचारिनी, एक मँदिर में बास।
वह रँग-राती पीव के, यह घर घर फिरै उदास ॥१७॥
नाम न रटा तो क्या हुआ, जो अंतर है हेत।
पतिबरता पति को भजै, मुख से नाम न लेत ॥१८॥
सुरत समानी नाम में, नाम किया परकास।
पतिबरता पति को मिली, पलक ना छाड़ै पास ॥१९॥
साईं मोर सुलच्छना, मैं बतिबरता नार।
द्यो दीदार दया करो, मेरे निज भरतार ॥२०॥
जो यह एक न जानिया, तो बहु जाने का होय।
एकै तें सब होत हैं, सब तें एक न होय ॥२१॥
जो यह एकै जानिया, तौ जानौ सब जान।
जो यह एक न जानिया, तौ सबही जान अजान ॥२२॥
सब आये उस एक में, डार पात फल फूल।
अब कहो पाछे क्या रहा, गहि पकड़ा जब मूल ॥२३॥
प्रीति अड़ी है तुज्झ से, बहु गुनियाला कंत।
जो हँस बोलौं और से, नील रँगाओं दंत ॥२४॥
कबीर रेख सिँदूर अरु, काजर दिया न जाय।
नैनन प्रीतम रमि रहा, दूजा कहाँ समाय ॥२५॥
आठ पहर चौंसठ घड़ी, मेरे और न कोय।
नैना माहीं तू बसै, नींद को ठौर न होय ॥२६॥
मेरा साईं एक तू, दूजा और न कोय।
दूजा साईं तौ करौं, जो कुल दूजो होय ॥२७॥
पतिबरता तब जानिये, रतिउ[1] न उघरै नैन।
अंतरगत सकुची रहै, बोलै मधुरे बैन ॥२८॥

---

(१) रत्ती भर भी।

भोरै भूली खसम को, कबहुँ न किया बिचार।
सतगुरु आन बताइया, पूरबला भरतार ॥२९॥
जो गावै सो गावना, जो जोड़ै सो जोड़।
पतिब्रता साधू जना, यहि कलि में हैं थोड़ ॥३०॥
पतिबरता ऐसे रहै, जैसे चोली पान[१]।
तब सुख देखै पीव का, चित्त न आवै आन ॥३१॥
मैं अबला पिउ पिउ करौं, निरगुन मेरा पीव।
सुन्न सनेही गुरू बिनु, और न देखौं जीव ॥३२॥

सती का अंग

अब तो ऐसी ह्वै परी, मन अति निर्मल कीन्ह।
मरने का भय छाड़ि के, हाथ सिंधोरा लीन्ह ॥ १ ॥
ढोल दमामा बाजिया, सबद सुना सब कोय।
जो सर[२] देखि सती भगै, दो कुल हाँसी होय ॥ २ ॥
सती जरन को नीकसी, चित धरि एक बिवेक।
तन मन सौंपा पीव को, अंतर रही न रेख ॥ ३ ॥
सती जरन को नीकसी, पिउ का सुमिरि सनेह।
सबद सुनत जिय नीकसा, भूलि गई निज देह ॥ ४ ॥
सती बिचारी सत किया, काँटों सेज बिछाय।
लै सूती पिय आपना, चहुँ दिस अगिनि लगाय ॥ ५ ॥
सती न पीसै पीसना, जो पीसै सो राँड़।
साधू भीख न माँगई, जो माँगै सो भाँड़ ॥ ६ ॥
हौं तोहि पूछौं हे सखी, जीवत क्यों न जराय।
मूए पीछे सत करै, जीवत क्यों न कराय ॥ ७ ॥

---

(१) चोली की दोनों टुक्कियों पर पान बना देते हैं। (२) अगिन।

बिभिचारिन का अंग

नारि कहावै पीव की, रहै और सँग सोय।
जार सदा मन में बसै, खसम खुसी क्यों होय ॥ १ ॥
सेज बिछावै सुन्दरी, अंतर परदा होय।
तन सौंपै मन दे नहीं, सदा दुहागिन सोय ॥ २ ॥
कबीर मन दीया नहीं, तन करि डारा जेर।
अंतरजामी लखि गया, बात कहन का फेर ॥ ३ ॥
नवसत[1] साजे सुन्दरी, तन मन रही सँजोय।
पिय के मन मानै नहीं, (तो) बिडँब[2] किये क्या होय ॥ ४ ॥
मुख से नाम रटा करै, निसु दिन साधन संग।
कहु धौं कौन कुफेर से, नाहिन लागत रंग ॥ ५ ॥
मन दीया कहिं औरही, तन साधन के संग।
कह कबीर कोरी गजी, कैसे लागै रंग ॥ ६ ॥
रात जगावै राँड़िया, गावै बिषया गीत।
मारै लोंदा लापसी, गुरू न लावै चीत ॥ ७ ॥
बिभिचारिन बिभिचार में, आठ पहर हुसियार।
कह कबीर पतिबर्त बिन, क्यों रीझै भरतार ॥ ८ ॥
कबीर जो कोइ सुन्दरी, जानि करै बिभिचार।
ताहि न कबहूँ आदरै, परम पुरुष भरतार ॥ ९ ॥
बिभिचारिन के बस नहीं, अपनो तन मन सोय।
कह कबीर पतिबर्त बिन, नारी गई बिगोय ॥१०॥
कबीर या जग आइ कै, कीया बहुतक मित[3]।
जिन दिल बाँधा एक से, ते सोवै निःचिंत ॥११॥

---

(१) नौ और सात—सोलह (सिंगार)। (२) बाहरी सजाव। (३) मित्र।

भक्ति का अंग

कबीर गुरु की भक्ति करु, तजि बिषया रस चौज।
बार बार नहिं पाइहै, मानुष जन्म की मौज॥ १॥
भक्ति बीज बिनसै नहीं, आइ पड़ै जो चोल[1]।
कंचन जो बिष्टा पड़ै, घटै न ता को मोल॥ २॥
गुरु भक्ती अति कठिन है, ज्यों खाँड़े की धार।
बिना साच पहुँचै नहीं, महा कठिन ब्यौहार॥ ३॥
भक्ति दुहेली[2] गुरू की, नहिं कायर का काम।
सीस उतारै हाथ से, सो लेसी सतनाम॥ ४॥
भक्ति दुहेली नाम की, जस खाँड़े की धार।
जो डोलै तो कटि परै, निःचल उतरै पार॥ ५॥
कबीर गुरु की भक्ति का, मन में बहुत हुलास।
मन मनसा माँजै नहीं, होन चहत है दास॥ ६॥
हरष बड़ाई देख करि, भक्ति करै संसार।
जब देखै कछु हीनता, औगुन धरै गँवार॥ ७॥
भक्ति निसेनी[3] मुक्ति की, संत चढ़े सब धाय।
जिन जिन मन आलस किया, जनम जनम पछिताय॥ ८॥
भक्ति बिना नहिं निस्तरै, लाख करै जो कोय।
सबद सनेही ह्वै रहै, घर को पहुँचै सोय॥ ९॥
जब लग नाता जगत का, तब लग भक्ति न होय।
नात तोड़ हरि को भजे, भक्त कहावै सोय॥१०॥
भक्ति प्रान तें होत है, मन दै कीजै भाव।
परमारथ परतीत में, यह तन जाव तो जाव॥११॥

---

(१) चाहे जैसे नीच ऊँच चोले या योनि में जीव आ पड़ै। (२) कठिन। (३) सीढ़ी।

भक्ति भेष बहु अंतरा, जैसे धरनि अकास।
भक्त लीन गुरु चरन में, भेष जगत की आस ॥१२॥
जहाँ भक्ति तहँ भेष नहिं, बर्नास्रम तहँ नाहिं।
नाम भक्ति जो प्रेम से, सो दुर्लभ जग माहिं ॥१३॥
भक्ति कठिन दुर्लभ महा, भेष सुगम निज सोय।
भक्ति नियारी भेष तें, यह जानै सब कोय ॥१४॥
भक्ति पदारथ जब मिलै, जब गुरु होय सहाय।
प्रेम प्रीति की भक्ति जो, पूरन भाग मिलाय ॥१५॥
सब से कहौं पुकारि कै, क्या पंडित क्या सेख।
भक्ति ठानि सबदै गहै, बहुरि न काछै भेख ॥१६॥
देखा देखी भक्ति का, कबहुँ न चढ़सी रंग।
बिपति पड़े यों छाड़सी, ज्यों केंचुली भुवंग ॥१७॥
टोटे में भक्ती करै, ता का नाम सपूत।
माया धारी मस्खरे, केते ही गये ऊत ॥१८॥
देखा देखी पकड़सी, गई छिनक में छूट।
कोइ बिरला जन बाहुरे, सतगुरु स्वामी मूठ ॥१६॥
ज्ञान सँपूरन ना भिदा, हिरदा नाहिं जुड़ाय।
देखा देखी भक्ति का, रंग नहीं ठहराय ॥२०॥
प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज डिंभ बिचार।
उद्र भरन के कारने, जनम गँवायो सार ॥२१॥
जान भक्त का नित मरन, अनजाने का राज।
सर औसर समझै नहीं, पेट भरन से काज ॥२२॥
खेत बिगार्‌यो खरतुआ[1], सभा बिगारी कूर[2]।
भक्ति बिगारी लालची, ज्यों केसर में घूर ॥२३॥

(१) एक निकम्मी घास जो आस पास के अनाज की डाभियों को जला देती है। (२) दुष्ट।

तिमिर गया रवि देखते, कुबुधि गई गुरु ज्ञान।
सुगति गई इक लोभ तें, भक्ति गई अभिमान ॥२४॥

भक्ति भाव भादों नदी, सबै चलीं घहराय।
सरिता सोई सराहिये, जो जेठ मास ठहराय ॥२५॥

कामी क्रोधी लालची, इन तें भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥२६॥

भक्ति दुवारा साकरा, राई दसवें भाव[1]।
मन ऐरावत[2] ह्वै रहा, कैसे होय समाव ॥२७॥

कबीर गुरु की भक्ति बिनु, धिग जीवन संसार।
धूआँ का सा धौलहर[3], जात न लागै बार ॥२८॥

निरपच्छी को भक्ति है, निरमोही को ज्ञान।
निरदुन्दी को मुक्ति है, निरलोभी निर्बान ॥२९॥

भक्ति सोई जो भाव से, इकसम चित को राखि।
साच सील से खेलिये, मैं तैं दोऊ नाखि[4] ॥३०॥

सत्त नाम हल जोतिया, सुमिरन बीज जमाय।
खंड ब्रह्मँड सूखा पड़ै, भक्ति बीज नहिं जाय ॥३१॥

जल ज्यों प्यारा माछरी, लोभी प्यारा दाम।
माता प्यारा बालका, भक्त पियारा नाम ॥३२॥

कबीर गुरु की भक्ति से, संसय डारा धोय।
भक्ति बिना जो दिन गया, सो दिन सालै मोय ॥३३॥

जब लगि भक्ति सकाम है, तब लगि निस्फल सेव।
कह कबीर वह क्यों मिलै, निःकामी निज देव ॥३४॥

भक्ति पियारी नाम की, जैसी प्यारी आगि।
सारा पट्टन[1] जरि गया, बहुरि ले आवै माँगि ॥३५॥

---

(१) राई के दसवें भाग जैसा झीना दरवाज़ा भक्ति का है। (२) इन्द्र का हाथी।

भक्ति बीज पलटै नहीं, जो जुग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत का संत ॥३६॥
जाति बरन कुल खोइ के, भक्ति करै चित लाय।
कह कबीर सतगुरु मिलैं, आवागवन नसाय ॥३७॥
भक्ति गेंद चौगान की, भावै कोइ लै जाय।
कह कबीर कछु भेद नहिं, कहा रंक कहा राय ॥३८॥

लव का अंग

लव लागी तब जानिये, छूटि कभूँ नहिं जाय।
जीवत लव लागी रहै, मूए तहँहिं समाय ॥ १ ॥
जब लग कथनी हम कथी, दूर रहा जगदीस।
लव लागी कल ना परै, अब बोलत न हदीस ॥ २ ॥
काया कमँडल भरि लिया, उज्जल निर्मल नीर।
पीवत तृषा न भाजही, तिरषा-वंत कबीर ॥ ३ ॥
मन उलटा दरिया मिला, लागा मलि मलि न्हान।
थाहत थाह न आवई, सो पूरा रहमान ॥ ४ ॥
गंग जमुन उर अंतरे, सहज सुन्न लव घाट।
तहाँ कबीरा मठ रचा, मुनि जन जोवैं बाट ॥ ५ ॥
जेहि बन सिंह न संचरै, पंछी उड़ि नहिं जाय।
रैन दिवस की गम नहीं, तहँ कबीर लव लाय ॥ ६ ॥
लै पावो तो लै रहो, लैन कहूँ नहिं जाँव।
लै बूड़ै सो लै तिरै, लै लै तेरो नाँव ॥ ७ ॥
लव लागी कल ना पड़ै, आप बिसरजनि देह।
अमृत पीवै आतमा, गुरु से जुड़ै सनेह ॥ ८ ॥

जैसी लव पहिले लगी, तैसी निबहै ओर।
अपनी देंह की को गिनै, तारै पुरुष करोर ॥ ९ ॥
लागी लागी क्या करै, लागी बुरी बलाय।
लागी सोई जानिये, जो वार पार होइ जाय ॥१०॥
लागी लागी क्या करै, लागी नाहीं एक।
लागी सोई जानिये, परै कलेजे छेक ॥११॥
लागी लागी क्या करै, लागी सोई सराह।
लागी तबही जानिये, उठै कराह कराह ॥१२॥
लगी लगन छूटै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठा कहा अँगार में, जाहि चकोर चबाय ॥१३॥
चकोर भरोसे चंद के, निगलै तप्त अँगार।
कह कबीर छाड़ै नहीं, ऐसी बस्तु लगार[1] ॥१४॥
जो तू पिय की प्यारिनी, अपना करि ले री।
कलह कल्पना मेटि कै, चरनों चित दे री ॥१५॥
और सुरत बिसरी सकल, लव लागी रहे संग।
आव जाव का से कहौं, मन राता गुरु रंग ॥१६॥
ग्रंथ माहिं पाया अरथ, अरथे माहीं मूल।
लव लागी निरमल भया, मिटि गया संसय सूल ॥१७॥
सोवौं तो सुपने मिलै, जागौं तो मन माहिं।
लोयन[2] राता सुधि हरी, बिछुरत कबहूँ नाहिं ॥१८॥
तूँ तूँ करता तूँ भया, तुझ में रहा समाय।
तुझ माहीं मन मिलि रहा, अब कहुँ अनत न जाय ॥१९॥

बिरह का अंग

बिरहिनि देइ सँदेसरा, सुनी हमारे पीव।
जल बिन मच्छी क्यों जिये, पानी में का जीव ॥ १ ॥

---

(१) लगन का तीर। (२) आँखें।

बिरह तेज तन में तपै, अंग सबै अकुलाय ।
घट सूना जिव पीव में, मौत ढूँढ़ि फिर जाय ॥ २ ॥
बिरह जलंती देखि कर, साईं आये धाय ।
प्रेम बूँद से छिरकि के, जलती लई बुझाय ॥ ३ ॥
अँखियन तो झाँईं परी, पंथ निहार निहार ।
जिभ्या तो छाला परा, नाम पुकार पुकार ॥ ४ ॥
नैनन तो झरि लाइया, रहट बहै निसु बास ।
पपिहा ज्यों पिउ पिउ रटै, पिया मिलन की आस ॥ ५ ॥
बिरह बड़ा बैरी भयो, हिरदा धरै न धीर ।
सुरत-सनेही ना मिलै, तब लगि मिटै न पीर ॥ ६ ॥
बिरहिन ऊभी पंथ सिर, पंथिनि पूछै धाय[१] ।
एक सबद कहु पीव का, कब रे मिलैंगे आय ॥ ७ ॥
बहुत दिनन की जोवती, रटत तुम्हारो नाम ।
जिव तरसै तुव मिलन को, मन नाहीं बिस्राम ॥ ८ ॥
बिरह भुवंगम[२] तन डसा, मंत्र न लागै कोय ।
नाम बियोगी ना जियै, जिये तो बाउर[३] होय ॥ ९ ॥
बिरह भुवंगम पैठि कै, किया कलेजे घाव ।
बिरहिन अंग न मोड़िहै, ज्यों भावै त्यों खाव ॥१०॥
बिरहा पीव पठाइया, कहि साधू परमोधि[४] ।
जा घट तालाबेलिया[५], ता को लावो सोधि ॥११॥
कबीर सुन्दरि यों कहै, सुनिये कंत सुजान ।
वेगि मिलो तुम आइ के, नहीं तो तजिहौं प्रान ॥१२॥
कै बिरहिन को मीच दे, कै आपा दिखलाय ।
आठ पहर का दाझना, मो पै सहा न जाय ॥१३॥

---

(१) बिरहिन रास्ते में खड़ी होकर बटोही से पूछती है। (२) साँप। (३) बौड़हा। (४) शान्ति देना। (५) व्याकुलता।

बिरह कमंडल कर लिये, वैरागी दो नैन।
माँगैं दरस मधूकरी, छके रहैं दिन रैन ॥१४॥
येहि तन का दिवला करौं, बाती मेलौं जीव।
लोहू सींचौं तेल ज्यों, कब मुख देखौं पीव ॥१५॥
कबीर हँसना दूर करु, रोने से करु चीत।
बिन रोये क्यों पाइये, प्रेम पियारा मीत ॥१६॥
हँसों तो दुख ना बीसरै, रोश्रों बल घटि जाय।
मनहीं माहीं बिसुरना, ज्यों घुन काठहिं खाय ॥१७॥
कीड़े काठ जो खाइया, खात किनहुँ नहिं दीठ।
छाल उपारि[1] जो देखिया, भीतर जमिया चीठ[2] ॥१८॥
हँस हँस कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेले पिय मिलैं, तो कौन दुहागिनि होय ॥१९॥
सुखिया सब संसार है, खावै औ सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै औ रोवै ॥२०॥
नाम बियोगी बिकल तन, ताहि न चीन्हे कोय।
तम्बोली का पान ज्यों, दिन दिन पीला होय ॥२१॥
नैन हमारे बावरे, छिन छिन लोड़ैं[3] तुज्झ।
ना तुम मिलो न मैं सुखी, ऐसी वेदन मुज्झ ॥२२॥
माँस गया पिंजर रहा, ताकन लागे काग।
साहिब अजहुँ न आइया, मंद हमारे भाग ॥२३॥
बिरहा सेती मति अड़ै, रे मन मोर सुजान।
हाड़ मास सब खात है, जीवत करै मसान ॥२४॥
अंदेसो नहिं भागसी, संदेसो कहि आय।
कै आवै पिय आपही, कै मोहिं पास बुलाय ॥२५॥

---

(१) उखाड़ कर। (२) लकड़ी का चूरा या बुरादा। (३) चाहैं।

आय सकों नहिं तोहिं पै, सकों न तुज्झ बुलाय।
जियरा यों लय होयगा, बिरह तपाय तपाय ॥२६॥
अँखियाँ प्रेम बसाइया, जनि जाने दुखदाय।
नाम सनेही कारने, रो रो रात बिताय ॥२७॥
जोई आँसू सजन जन, सोई लोक बहाहि।
जो लोचन लोहू चुवै, तौ जानौं हेतु हियाहि ॥२८॥
हवस करै पिय मिलन की, औ सुख चाहै अंग।
पीड़ सहे बिनु पदमिनी, पूत न लेत उछंग[1] ॥२९॥
बिरहिनि ओदी लाकड़ी, सपचे औ धुँधुआय।
छूट पड़ों या बिरह से, जो सिगरो जरि जाय ॥३०॥
तन मन जोबन यों जला, बिरह अगिनि से लागि।
मिर्तक पीड़ा जानही, जानैगी क्या आगि ॥३१॥
फाड़ि पटोली[2] धुज करों, कामलड़ी[3] फहराय।
जेहिं जेहिं भेषे पिय मिलै, सोइ सोइ भेष कराय ॥३२॥
परबत परबत मैं फिरी, नैन गँवायो रोय।
सो बूटी पायों नहीं, जा तें जीवन होय ॥३३॥
बिरह जलंती मैं फिरों, मो बिरहिनि को दुक्ख।
छाँह न बैठों डरपती, मत जलि उट्ठै रुक्ख[4] ॥३४॥
चूड़ी पटकों पलँग से, चोली लाओं आगि।
जा कारन यह तन धरा, ना सूती गल लागि ॥३५॥
अंबर[5] कुज्जा[6] करि लिया, गरजि भरे सब ताल।
जिन तें प्रीतम बीछुरा, तिन का कौन हवाल ॥३६॥
कागा करँक[7] ढँढोलिया[8], मुट्ठी इक लिया हाड़।
जा पिंजर बिरहा बसै, माँस कहाँ तें काढ़ ॥३७॥

---

(१) उत्साह से। (२) दुपट्टा। (३) कमरी यानी छोटा कम्बल। (४) पेड़। (५) आकाश। (६) मिट्टी का भाँड़ा। (७) हड्डी की ठठरी। (८) ढूँढ़ा।

रक्त माँस सब भखि गया, नेक न कीन्ही कानि[1] ।
अब बिरहा कूकर भया, लागा हाड़ चबान ॥३८॥

बिरहा भयो बिछावना, ओढ़न बिपति बिजोग ।
दुख सिरहाने पायतन[2], कौन बना संजोग ॥३९॥

बिरहिनि बिरह जगाइया, पैठि ढँढोरै छार[3] ।
मत कोइ कोइला ऊबरै, जारै दूजी बार ॥४०॥

तन मन जोबन जारि के, भस्म करी है देह ।
उठी कबीरा बिरहिनी, अजहुँ ढँढोरै खेह[3] ॥४१॥

अंक भरी भरि भेंटिये, मन नहिं बाँधै धीर ।
कह कबीर ते क्या मिले, जब लगि दोय सरीर ॥४२॥

जो जन बिरही नाम के, झीना पिंजर तासु ।
नैन न आवै नींदड़ी, अंग न जामै मासु ॥४३॥

नाम बियोगी बिकल तन, कर छूओ मत कोय ।
छूवत ही मरि जाइगो, तालाबेली[4] होय ॥४४॥

जो जन भींजे नाम रस, बिगसित कबहुँ न मुक्ख ।
अनुभव भावन दरसही, ते नर सुक्ख न दुक्ख[5] ॥४५॥

कबीर चिनगी बिरह की, मो तन पड़ी उड़ाय ।
तन जरि धरती हू जरी, अंबर जरिया जाय ॥४६॥

दीपक पावक आनिया, तेल भी लाया संग ।
तीनों मिलि करि जोइया[6], उड़ि उड़ि मिलै पतंग ॥४७॥

हिरदे भीतर दव[7] बलै, धुवाँ न परगट होय ।
जा के लागी सो लखै, की जिन लाई सोय ॥४८॥

---

(१) लिहाज, मुरौवत । (२) पैताने । (३) राख को ढँढोलती है । (४) तड़प, बेकली । (५) जो भक्त नाम रस में पगे हैं और जिनका अनुभव जागा है उनको बाहरी हर्ष नहीं होता और दुख सुख के परे हो जाते हैं । (६) संयोया । (७) आग ।

झाल उठी झोली जली, खप्पर फूटम फूट।
हंसा जोगी चलि गया, आसन रही भभूत ॥४६॥
आगे आगे दव बलै, पाछे हरियर होय[1]।
बलिहारी वा बृच्छ[2] की, जड़ काटे फल जोय ॥५०॥
कबीर सुपने रैन के, पड़ा कलेजे छेक।
जब सोवों तब दुइ जना, जब जागों तब एक ॥५१॥
पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय।
चित चकमक चहुटै[3] नहीं, धूवाँ ह्वै ह्वै जाय ॥५२॥
बिरहा मो से यों कहै, गाढ़ा[4] पकड़ो मोहिं।
चरन कमल की मौज में, ले पहुँचाओं तोहिं ॥५३॥
सबही तरु तर जाइ के, सब फल लीन्हो चीख।
फिरि फिरि मँगत कबीर है, दरसन ही की भीख ॥५४॥
बिरह प्रबल दल साजि के, घेर लियो मोहिं आय।
नहिं मारै छाड़ै नहीं, तलफ तलफ जिय जाय ॥५५॥
पिय बिन जिय तरसत रहै, पल पल बिरह सताय।
रैन दिवस मोहिं कल नहीं, सिसक सिसक जिय जाय ॥५६॥
जो जन बिरही नाम के, तिन की गति है येह।
देंही से उद्यम करैं, सुमिरन करैं बिदेह ॥५७॥
साईं सेवत जल गई, मास न रहिया देंह।
साईं जब लगि सेइहों, यह तन होय न खेह ॥५८॥
निस दिन दाझै बिरहिनी, अंतरगत की लाय[5]।
दास कबीरा क्यों बुझै, सतगुरु गये लगाय ॥५९॥
पीर पुरानी बिरह की, पिंजर पीर न जाय।
एक पीर है प्रीति की, रही कलेजे छाय ॥६०॥

---

(१) झाडी को जला देने से थोड़े दिन में वह खूब हरी उगती है। (२) चाह। (३) चोट लगाना। (४) मजबूत। (५) आग।

चोट सतावै बिरह की, सब तन जरजर होय।
मारनहारा जानही, कै जेहि लागी सोय ॥६१॥
बिरहा बिरहा मत कहो, बिरहा है सुल्तान।
जा घट बिरह न संचरै, सो घट जान मसान ॥६२॥
देखत देखत दिन गया, निस भी देखत जाय।
बिरहिनि पिय पावै नहीं, बेकल जिय घबराय ॥६३॥
गलौं तुम्हारे नाम पर, ज्यों आटे में नोन।
ऐसा बिरहा मेल करि, नित दुख पावै कौन ॥६४॥
सो दिन कैसा होयगा, गुरू गहेंगे बाँहि।
अपना करि बैठावहीं, चरन कँवल की छाँहि ॥६५॥
जो जन बिरही नाम के, सदा मगन मन माहिं।
ज्यों दरपन की सुंदरी, किनहूँ पकड़ी नाहिं ॥६६॥
तन भीतर मन मानिया, बाहर कहूँ न लाग।
ज्वाला तें फिर जल भया, बुझी जलंती आग ॥६७॥
चकई बिछुरी रैन की, आय मिली परभात।
सतगुरु से जो बीछुरे, मिलैं दिवस नहिं रात ॥६८॥
बासर सुख नहिं रैन सुख, ना सुख सुपने माहिँ।
सतगुरु से जो बीछुरे, तिन को धूप न छाँहि ॥६९॥
बिरहिनि उठि उठि भुइँ परै, दरसन कारन राम।
मूए पीछे देहुगे, सो दरसन केहि काम ॥७०॥
मूए पीछे मत मिलो, कहै कबीरा राम।
लोहा माटी मिलि गया, तब पारस केहि काम ॥७१॥
यह तन जारि भसम करौं, धूवाँ होय सुरंग।
कबहुक गुरु दाया करैं, बरसि बुझावैं अंग ॥७२॥

यह तन जारि के मसि[१] करौं, लिखौं गुरू का नाँव ।
करौं लेखनी[२] करम की, लिखि लिखि गुरू पठाँव ॥७३॥
बिरहा पूत लोहार का, धँवै[३] हमारी देंह ।
कोइला ह्वै नहिं छूटिहै, जब लगि होय न खेह ॥७४॥
बिरहिनि थी तौ क्यों रही, जरी न पिउ के साथ ।
रहि रहि मूढ़ गहेलरी, अब क्यों मींजै हाथ ॥७५॥
लकरी जरि कोइला भई, मो तन अजहूँ आगि ।
बिरह की ओदी लाकरी, सिलगि सिलगि उठि जागि ॥७६॥
बिरह बिथा बैराग की, कही न काहू जाय ।
गूँगा सुपना देखिया, समझि समझि पछिताय ॥७७॥
सब रग ताँत रबाब[४] तन, बिरह बजावै नित्त ।
और न कोई सुनि सकै, कै साईं कै चित्त ॥७८॥
तूँ मति जानै बीसरूँ, प्रीति घटै मम चित्त ।
मरूँ तो तुम सुमिरत मरूँ, जिऊँ तो सुमिरूँ नित्त ॥७९॥
मो बिरहिनि का पिउ मुआ, दाग न दीया जाय ।
मासहिं गलि गलि भुइँ परा, करँक रही लपटाय ॥८०॥
भली भई जो पिउ मुआ, नित उठि करता रार ।
छूटी गल की फाँसरी, सोऊँ पाँव पसार ॥८१॥
जीव बिलंबा पीव से, अलख लख्यो नहिं जाय ।
साहिब मिलै न झल बुझै, रही बुझाय बुझाय ॥८२॥
जीव बिलंबा पीव से, पिय जो लिया मिलाय ।
लेख समान[५] अलेख में, अब कछु कहा न जाय ॥८३॥
आगि लगी आकास में, झरि झरि परै अँगार ।
कबिरा जरि कंचन भया, काँच भया संसार ॥८४॥

---

(१) सियाही । (२) क़लम । (३) धौंकै । (४) एक बाजा जो मुँह से बजाया जाता है । (५) समाया ।

बिरह अगिन तनै मन जला, लागि रहा तंत जीव ।
कै वा जानै बिरहिनी, कै जिन भेंटा पीव ॥८५॥
बिरह कुल्हारी तन बहै[1], घाव न बाँधै रोह ।
मरने का संसय नहीं, छूटि गया भ्रम मोह ॥८६॥
कबीर बैद बुलाइया, पकरि के देखी बाँहिं ।
बैद न वेदन जानई, करक करेजे माहिं ॥८७॥
जाहु बैद घर आपने, तेरा किया न होय ।
जिन या बेदन निर्मई[2], भला करैगा सोय ॥८८॥
जाहु मीत घर आपने, बात न पूछै कोय ।
जिन यह भार लदाइया, निरबाहैगा सोय ॥८९॥

प्रेम का अंग

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं ।
जीस उतारै भुइँ धरै, तब पैठै घर माहिं ॥ १ ॥
सीस उतारै भुइँ धरै, ता पर राखै पाँव ।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आव ॥ २ ॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय ॥ ३ ॥
प्रेम पियाला जो पियै, सीस दच्छिना देय ।
लोभी सीस न दे सकै, नाम प्रेम का लेय ॥ ४ ॥
प्रेम पियाला भरि पिया, राचि रहा गुरु ज्ञान ।
दिया नगारा सबद का, लाल खड़े मैदान ॥ ५ ॥
छिनहिं चढ़ै छिन उतरै, सो तो प्रेम न होय ।
अघट[3] प्रेम पिंजर वसै, प्रेम कहावै सोय ॥ ६ ॥

---

(१) चलै । (२) उपजाई, पैदा की । (३) जो कभी घटता नहीं ।

आया प्रेम कहाँ गया, देखा था सब कोय।
छिन रोवै छिन में हँसै, सो तो प्रेम न होय॥ ७॥

प्रेम प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोय॥८॥

प्रेम पियारे लाल सों, मन दे कीजे भाव।
सतगुरु के परसाद से, भला बना है दाव॥ ९॥

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं॥१०॥

जा घट प्रेम न संचरै[1], सो घट जानु मसान।
जैसे खाल लोहार की, साँस लेत बिन प्रान॥११॥

आया बगूला[2] प्रेम का, तिनका उड़ा अकास।
तिनका तिनका से मिला, तिनका तिनके पास॥१२॥

प्रेम बिकंता मैं सुना, माथा साटे[3] हाट[4]।
बूझत बिलँब न कीजिये, तत्छिन दीजै काट॥१३॥

प्रेम बिना धीरज नहीं, बिरह बिना बैराग।
सतगुरु बिन जावै नहीं, मन मनसा का दाग॥१४॥

प्रेम तो ऐसा कीजिये, जैसे चन्द चकोर।
घींच[5] टूटि भुइँ माँ गिरै, चितवै वाही ओर॥१५॥

अधिक सनेही माछरी, दूजा अलप सनेह।
जबहीं जल तें बीछुरै, तबही त्यागै देह॥१६॥

सौ जोजन साजन बसै, मानो हृदय मँझार।
कपट सनेही आँगने, जानु समुंदर पार॥१७॥

यह तत वह तत एक है, एक प्रान दुइ गात।
अपने जिय से जानिये, मेरे जिय की बात॥१८॥

---

(१) बसे। (२) बवंडर। (३) बदले। (४) बाजार। (५) गर्दन।

हम तुम्हरो सुमिरन करैं, तुम मोहिं चितवौ नाहिं ।
सुमिरन मन की प्रीति है, सो मन तुमहीं माहिँ ॥१९॥
मेरा मन तो तुज्झ से, तेरा मन कहुँ और ।
कह कबीर कैसे बनै, एक चित्त दुइ ठौर ॥२०॥
ज्यों मेरा मन तुज्झ से, यों तेरा जो होय ।
अहरन ताता लोह ज्यों, संधि लखै ना कोय ॥२१॥
प्रीति जो लागी घुलि गई, पैठि गई मन माहिं ।
रोम रोम पिउ पिउ करै, मुख की सरधा नाहिं ॥२२॥
जो जागत सो स्वप्न में, ज्यों घट भीतर स्वास ।
जो जन जा को भावता, सो जन ता के पास ॥२३॥
सोना सज्जन साधु जन, टूटि जुटै सौ बार ।
दुर्जन कुम्भ कुम्हार का, एकै धका दरार[1] ॥२४॥
प्रीति ताहि से कीजिये, जो आप समाना होय ।
कबहुँक जो अवगुन परै, गुनहीं लहै समोय ॥२५॥
प्रेम बनिज नहिं करि सकै, चढ़ै न नाम की गैल ।
मानुष केरी खालरी, ओढ़ि फिरै ज्यों बैल ॥२६॥
जहाँ प्रेम तहँ नेम नहिं, तहाँ न बुधि व्योहार ।
प्रेम मगन जब मन भया, तब कौन गिनै तिथि बार ॥२७॥
प्रेम पाँवरी पहिरि कै, धीरज काजर देइ ।
सील सिंदूर भराइ कै, यों पिय का सुख लेइ ॥२८॥
प्रेम छिपाया ना छिपै, जा घट परघट होय ।
जो पै मुख बोलै नहीं, तो नैन देत हैं रोय ॥२९॥

(१) सज्जन और साधु जन सोने के समान हैं कि सौ बार भी टूटने पर जुट जाते हैं पर दुष्ट जन मट्टी के घड़े के सदृश हैं जिसमें एक ही धका लगने से दरार पड़ जाती है ।

प्रेम भाव इक चाहिये, भेष अनेक बनाय।
भावे गृह में बास कर, भावे बन में जाय ॥३०॥
जोगी जंगम सेवड़ा, सन्यासी दुरवेस।
बिना प्रेम पहुँचे नहीं, दुरलभ सतगुरु देस ॥३१॥
पीया चाहै प्रेम रस, राखा चाहै मान।
एक म्यान में दो खड्ग, देखा सुना न कान ॥३२॥
प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरौं, प्रेमी मिलै न कोय।
प्रेमी से प्रेमी मिलै, गुरु भक्ती दृढ़ होय ॥३३॥
कबीर प्याला प्रेम का, अंतर लिया लगाय।
रोम रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय ॥३४॥
कबीर हम गुरु रस पिया, बाकी रही न छाक[1]।
पाका कलस कुम्हार का, बहुरि न चढ़सी चाक ॥३५॥
नाम रसायन अधिक रस, पीवत अधिक रसाल[2]।
कबीर पावन दुलभ है, माँगे सीस कलाल[3] ॥३६॥
कबीर भाठी प्रेम की, बहुतक बैठे आय।
सिर सौंपै सो पीवसी, नातर[4] पिया न जाय ॥३७॥
यह रस महँगा पिवै सो, छाड़ि जीव की बान।
माथा साटे[5] जो मिलै, तौ भी सस्ता जान ॥३८॥
पिया रस पिया सो जानिये, उतरै नहीं खुमार।
नाम अमल माता रहै, पियै अमी रस सार ॥३९॥
सबै रसायन मैं किया, प्रेम समान न कोय।
रति इक तन में संचरै, सब तन कंचन होय ॥४०॥
सागर उमड़ा प्रेम का, खेवटिया कोइ एक।
सब प्रेमी मिलि बूड़ते, जो यह नहिं होता टेक ॥४१॥

---

(१) इच्छा। (२) अच्छा, मीठा। (३) शराब बनाने वाला। (४) नहीं। (५) बदले।

यही प्रेम निरबाहिये, रहनि किनारे बैठि।
सागर तें न्यारा रहा, गया लहरि में पैठि ॥४२॥
अमृत केरी मोटरी, राखी सतगुरु छोरि।
आप सरीखा जो मिलै, ताहि पिलावैं घोरि ॥४३॥
अमृत पीवै ते जना, सतगुरु लागा कान।
वस्तु अगोचर मिलि गई, मन नहिं आवै आन ॥४४॥
साधू सीप समुद्र के, सतगुरु स्वाँती बुंद।
तृषा गई इक बुंद से, क्या ले करौं समुंद ॥४५॥
मिलना जग में कठिन है, मिलि बिछुड़ो जनि कोय।
बिछुड़ा सज्जन तेहि मिलै, जिन माथे मनि होय ॥४६॥
जोइ मिलै सो प्रीति में, और मिलै सब कोय।
मन से मनसा ना मिलै, तो देह मिले का होय ॥४७॥
जो दिल दिलही में रहै, सो दिल कहूँ न जाय।
जो दिल दिल से बाहिरा, सो दिल कहाँ समाय ॥४८॥
जैसी प्रीति कुटुम्ब से, तैसिहु गुरु से होय।
कहै कबीर वा दास का, पला न पकड़ै कोय ॥४९॥
नैनों की करि कोठरी, पुतली पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डारि कै, पिय को लिया रिझाय ॥५०॥
जब लगि मरने से डरै, तब लगि प्रेमी नाहिं।
बड़ी दूर है प्रेम घर, समुझि लेहु मन माहिं ॥५१॥
पिय का मारग कठिन है, खाँड़ा हो जैसा।
नाचन निकसी बापुरी, फिर घूँघट कैसा ॥५२॥
पिय का मारग सुगम है, तेरा चलन अनेढ़।
नाच न जानै बापुरी, कहै आँगना टेढ़ ॥५३॥
यह तो घर है प्रेम का, मारग अगम अगाध।
सीस काटि पग तर धरै, तब निकट प्रेम का स्वाद ॥५४॥

प्रेम भक्ति का गेह है, ऊँचा बहुत इकंत।
सीस काटि पग तर धरै, तब पहुँचै घर संत ॥५५॥
सीस काटि पासँग किया, जीव सेर भर लीन्ह।
जो भावै सो आइ ले, प्रेम आगे हम कीन्ह ॥५६॥
प्रेम प्रीति में रचि रहै, मोच्छ मुक्ति फल पाय।
सबद माहिं तब मिलि रहै, नहिं आवै नहिं जाय ॥५७॥
जो तू प्यासा प्रेम का, सीस काटि करि गोय।
जब तू ऐसा करैगा, तब कछु होय तो होय ॥५८॥
हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत है, हरिजन हरिहीं देत ॥५९॥
प्रीति बहुत संसार में, नाना बिधि की सोय।
उत्तम प्रीति सो जानिये, सतगुरु से जो होय ॥६०।
गुनवंता औ द्रव्य की, प्रीति करै सब कोय।
कबीर प्रीति सो जानिये, इन तें न्यारी होय ॥६१।
कबीर ता से प्रीति करु, जो निरबाहै ओर।
बनै तो बिबिधि न राचिये, देखत लागै खोर ॥६२॥
कहा भयो तन बीछुरे, दूरि बसे जे बास।
नैनाहीं अंतर परा, प्रान तुम्हारे पास ॥६३॥
जो है जा का भावता, जब तब मिलिहै आय।
तन मन ता को सौंपिये, जो कबहूँ छाड़ि न जाय ॥६४॥
जल में बसै कमोदिनी, चंदा बसै अकास।
जो है जा का भावता, सो ताही के पास ॥६५॥
तन दिखलावै आपना, कछु न राखै गोय।
जैसी प्रीति कमोदिनी, ऐसी प्रीति जो होय ॥६६॥
सही हेत है तासु का, जा के सतगुरु टेक।
टेक निबाहै देह भरि, रहै सबद मिलि एक ॥६७॥

पासा पकड़ा प्रेम का, सारी[1] किया सरीर।
सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥६८॥
खेल जो मँडा खिलाड़ि से, आनँद बढ़ा अघाय।
अब पासा काहू परौ, प्रेम बँधा जुग जाय ॥६९॥
प्रीतम को पतियाँ लिखूँ, जो कहुँ होय बिदेस।
तन में मन में नैन में, ता को कहा सँदेस ॥७०॥

सतसंग का अंग

[सज्जन के लिये]

संगति से सुख ऊपजे, कुसंगति से दुख जोय।
कहै कबीर तहँ जाइये, साधु संग जहँ होय ॥ १ ॥
संगति कीजे संत की, जिन का पूरा मन।
अनतोले ही देत हैं, नाम सरीखा धन ॥ २ ॥
कबीर संगत साध की, हरै और की व्याधि।
संगत बुरी असाध की, आठो पहर उपाधि ॥ ३ ॥
कबीर संगत साध की, जौ की भूसी खाय।
खीर खाँड़ भोजन मिलै, साकट संग न जाय ॥ ४ ॥
कबीर संगत साध की, ज्यों गंधी का बास।
जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुबास ॥ ५ ॥
ऋद्धि सिद्धि माँगौं नहीं, माँगौं तुम पै येह।
निसु दिन दरसन साध का, कह कबीर मोहिं देय ॥ ६ ॥
कबीर संगत साध की, निस्फल कधी न होय।
होसी चंदन बासना, नीम न कहसी कोय ॥ ७ ॥

---

(१) गोट।

कबीर संगत साध की, नित प्रति कीजै जाय।
दुर्मति दूर बहावसी, देसी सुमति बताय ॥ ८ ॥
मथुरा भावै द्वारिका, भावै जा जगन्नाथ।
साध सँगति हरि भजन बिनु, कछू न आवै हाथ ॥ ९ ॥
साध सँगति अंतर पड़ै, यह मति कबहुँ न होय।
कहै कबीर तिहुँ लोक में, सुखी न देखा कोय ॥१०॥
कबीर कलह रु कल्पना, सतसंगति से जाय।
दुख वा से भागा फिरै, सुख में रहै समाय ॥११॥
साधुन के सतसंग तें, थरहर काँपै देंह।
कबहूँ भाव कुभाव तें, मत मिटि जाय सनेह ॥१२॥
राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधू संग में, सो बैकुंठ न होय ॥१३॥
बंधे को बंधा मिलै, छूटै कौन उपाय।
कर संगति निरबंध की, पल में लेइ छुड़ाय ॥१४॥
जा पल दरसन साधु का, ता पल की बलिहारि।
सत्त नाम रसना बसै, लीजै जनम सुधारि ॥१५॥
ते दिन गये अकारथी, संगति भई न संत।
प्रेम बिना पसु जीवना, भक्ति बिना भगवंत ॥१६॥
कबीर लहर समुद्र की, निस्फल कधी न जाय।
बगुला परख न जानई, हंसा चुगि चुगि खाय ॥१७॥
जा घर गुरु की भक्ति नहिं, संत नहीं मिहमान।
ता घर जम डेरा दिया, जीवत भये मसान ॥१८॥
कबीर ता से संग करु, जो रे भजै सत नाम।
राजा राना छत्रपति, नाम बिना बेकाम ॥१९॥
कबीर मन पंछी भया, भावै तहवाँ जाय।
जो जैसी संगति करै, सो तैसा फल खाय ॥२०॥

कबीर चंदन के ढिंगे, बेधा ढाक पलास।
आप सरीखा करि लिया, जो था वा के पास ॥२१॥
कबीर खाई कोट की, पानी पिवै न कोय।
जाइ मिलै जब गंग से, सब गंगोदक होय ॥२२॥
एक घड़ी आधी घड़ी, आधी हूँ से आध।
कबीर संगति साध की, कटै कोटि अपराध ॥२३॥
घड़िहू की आधी घड़ी, भाव भक्ति में जाय।
सतसंगति पल ही भली, जम का धक्का न खाय ॥२४॥

———

[दुर्जन के लिये]

गति भई तो क्या भया, हिरदा भया कठोर।
ौ नेजा पानी चढ़ै, तऊ न भीजै कोर ॥२५॥
ुरिया जानै रूखड़ा, जो पानी का नेह।
सूखा काठ न जान ही, केतहु बूड़ा मेह ॥२६॥
कबीर मूढ़क प्रानियाँ, नखसिख पाखर आहि।
बाहनहारा क्या करै, बान न लागै ताहि ॥२७॥
पसुवा से पाला पर्‌यो, रहु रहु हिया न खीज।
ऊसर बीज न ऊगसी, घालै दूना बीज ॥२८॥
साखी सबद बहुत सुना, मिटा न मन का दाग।
संगति से सुधरा नहीं, ता का बड़ा अभाग ॥२९॥
चंदन परसा बावना, विष ना तजै भुवंग।
यह चाहै गुन आपना, कहा करै सतसंग ॥३०
कबीर चंदन के निकट, नीम भी चंदन होय।
बूड़े बाँस बड़ाइया, यों जनि बूड़ो कोय ॥३१

चंदन जैसा साध है, सर्पहिं सम संसार।
वा के अँग लपटा रहै, भाजै नाहिं बिकार ॥३२॥
भुवँगम बास न बेधई, चंदन दोष न लाय।
सब अँग तो बिष से भरा, अमृत कहाँ समाय ॥३३॥
सत्त नाम रटिबो करै, निसु दिन साधुन संग।
कहो जो कौन बिचार तें, नाहीं लागत रंग ॥३४॥
मन दीया कहुँ और ही, तन साधुन के संग।
कहै कबीर कोरी गजी, कैसे लागै रंग ॥३५॥

कुसंग का अंग

जानि बूझि साची तजै, करै झूठ से नेह।
ता की संगति हे प्रभू, सपनेहू मत देह ॥ १ ॥
काँचा सेती मत मिलै, पाका सेती बान।
काँचा सेती मिलत ही, होय भक्ति में हान ॥ २ ॥
तोहि पीर जो प्रेम की, पाका सेती खेल।
काँची सरसों पेरि कै, खली भया ना तेल ॥ ३ ॥
कुल टूटा काँची परी, सरा न एकौ काम।
चौरासी बासा भया, दूरि परा सतनाम ॥ ४ ॥
दाग जो लागा नील का, सौ मन साबुन धोय।
कोटि जतन परबोधिये, कागा हंस न होय ॥ ५ ॥
मूरख के समुझावने, ज्ञान गाँठि को जाय।
कोइला होय न ऊजला, सौ मन साबुन लाय ॥ ६ ॥
लहसुन से चंदन डरै, मत रे बिगारै बास।
निगुरा से सगुरा डरै, यों डरपै जग से दास ॥ ७ ॥

संसारी साकट भला, कन्या क्वारी भाय।
साधु दुराचारी बुरा, हरिजन तहाँ न जाय ॥ ८ ॥
साधु भया तो क्या भया, माला पहिरी चार।
ऊपर कली[1] लपेटि कै, भीतर भरी भँगार ॥ ९ ॥
कबीर कुसँग न कीजिये, लोहा जल न तिराय।
कदली[2] सीप भुवंग मुख, एक बूँद त्रिभाय ॥१०॥
उज्जल बूँद अकास की, परि गई भूमि बिकार।
मूल बिना ठाम्रा[3] नहीं, बिन संगति भो छार ॥११॥
हरिजन सेती रूसना, संसारी से हेत।
ते नर कधी न नीपजैं, ज्यों कालर[4] का खेत ॥१२॥
गिरिये पर्वत सिखर तें, परिये धरनि मँझार।
मूरख मित्र न कीजिये, बूड़ौ काली धार ॥१३॥
मारी मरै कुसंग की, ज्यों केला ढिग बेरि।
वह हालै वह जीरई[5], साकट संग निवेरि ॥१४॥
केला तबहिं न चेतिया, जब ढिग जागी बेरि।
अब के चेते क्या भया, काँटों लीन्हा घेरि ॥१५॥
कबीर कहते क्यों बनै, अनबनता के संग।
दीपक को भावै नहीं, जरि जरि मरै पतंग ॥१६॥
ऊँचे कुल कहा जनमिया, जो करनी ऊँचि न होय।
कनक कलस मद से भरा, साधन निंदा सोय ॥१७॥

सूक्ष्म मार्ग का अंग

उत तें कोई न वाहुरा, जा से बूझूँ धाय।
इत तें सब ही जात हैं, भार लदाय लदाय ॥ १ ॥

---

(१) क़लई। (२) केला। (३) ठौर, ठिकाना। (४) रेहार यानी रेह का।
(५) मुरझाय।

उत तें सतगुरु आइया, जा की बुधि है धीर।
भवसागर के जीव को, खेइ लगावैं तीर॥ २॥
गागर ऊपर गागरी, चोले ऊपर द्वार।
सूली ऊपर साँथरा, जहाँ बुलावै यार॥ ३॥
कौन सुरति लै आवई, कौन सुरति लै जाय।
कौन सुरति है इस्थिरे, सो गुरु देहु बताय॥ ४॥
बास[1] सुरति लै आवई, सबद सुरति लै जाय।
परिचय सुति है इस्थिरे, सो गुरु दई बताय॥ ५॥
जा कारन मैं जाय था, सो तो मिलिया आय।
साईं तें सन्मुख भया, लागि कबीरा पाँय॥ ६॥
जो आवै तो जाय नहिं, जाय तो आवै नाहिं।
अकथ कहानी प्रेम की, समुझि लेहु मन माहिं॥ ७॥
कौन देस कँह आइया, जानै कोई नाहिं।
वह मारग पावै नहीं, भूलि परे येहि माहिं॥ ८॥
हम चाले अमरावती, टारे टूरे टाट।
आवन होय तो आइयो, सूली ऊपर बाट॥ ९॥
सूली ऊपर घर करै, बिष का करै अहार।
ता का काल कहा करै, जो आठ पहर हुसियार॥१०॥
यार बुलावै भाव से, मो पै गया न जाय।
धन मैली पिउ ऊजला, लागि न सक्कों पाँय॥११॥
नाँव न जानै गाँव का, बिन जाने कित जाँव।
चलते चलते जुग भया, पाव कोस पर गाँव॥१२॥
सतगुरु दीन दयाल हैं, दया करी मोहिं आय।
कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुँचा जाय॥१३॥

---

(१) वासना।

अगम पंथ मन थिर रहै, बुद्धि करै परवेस।
तन मन धन सब छाड़ि कै, तब पहुँचै वा देस ॥१४॥
सब को पूछत मैं फिरा, रहन कहै नहिं कोय।
प्रीति न जोरै गुरू से, रहन कहाँ से होय ॥१५॥
चलन चलन सब कोइ कहै, मोहिं अँदेसा और।
साहिब से परिचय नहीं, पहुँचैंगे केहि ठौर ॥१६॥
कबीर मारग कठिन है, कोई सकै न जाय।
गया जो सो बहुरै नहीं, कुसल कहै को आय ॥१७॥
कबीर का घर सिखर पर, जहाँ सिलहिली गैल।
पाँव न टिकै पपीलि[1] का, पंडित लादे बैल ॥१८॥
जहाँ न चींटी चढ़ि सकै, राई ना ठहराय।
मनुवाँ तहँ लै राखिया, तहईं पहुँचे जाय ॥१९॥
कबीर मारग कठिन है, सब मुनि बैठे थाकि।
तहाँ कबीरा चढ़ि गया, गहि सतगुरु की साखि[2] ॥२०॥
सुर नर थाके मुनि जना, उहाँ न कोई जाय।
मोटा[3] भाग कबीर का, तहाँ रहा घर छाय ॥२१॥
सुर नर थाके मुनि जना, थाके बिस्नु महेस।
तहाँ कबीरा चढ़ि गया, सतगुरु के उपदेस ॥२२॥
कबीर गुरु हथियार करि, कूड़ा गली निवारु।
जो जो पंथे चालना, सो सो पंथ सँभारु ॥२३॥
अगम्म हूँ तें अगम है, अपरम्पार अपार।
तहँ मन धीरज क्यों धरै, पंथ खरा निरधार ॥२४॥
बिन पाँवन की राह है, बिन बस्ती का देस।
बिना पिंड का पुरुप है, कहै कबीर सँदेस ॥२५॥

---

(१) चींटी। (२) भरोसा। (३) बड़ा।

जेहि पैंड़े पंडित गया, तिस ही गही बहीर[1]।
औघट घाटी नाम की, तहँ चढ़ि रहा कबीर ॥२६॥

घाटहि पानी सब भरै, औघट भरै न कोय।
औघट घाट कबीर का, भरै सो निर्मल होय ॥२७॥

बाट बिचारी क्या करै, पंथि न चलै सुधार।
राह आपनी छाड़ि कै, चलै उजाड़ उजाड़ ॥२८॥

कहँ तें तुम जो आइया, कौन तुम्हारा ठाम।
कौन तुम्हारी जाति है, कौन पुरुष का नाम ॥२९॥

अमर लोक तें आइया, सुख के सागर ठाम।
जाति हमारि अजाति है, अमर पुरुष का नाम ॥३०॥

कहवाँ तें जिव आइया, कहवाँ जाय समाय।
कौन डोरि धरि संचरै[2], मोहिं कहो समुझाय ॥३१॥

सरगुन तें जिव आइया, निरगुन जाय समाय।
सुरति डोर धरि संचरै, सतगुरु कहि समुझाय ॥३२॥

ना वहँ आवागवन था, नहिं धरती आकास।
कबीर जन कहवाँ हते, तब था कोइ न पास ॥३३॥

नाहीं आवागवन था, नहिं धरती आकास।
हतो कबीरा दास जन, साहिब पास खवास ॥३४॥

पहुँचेंगे तब कहेंगे, वही देस की सीच[3]।
अबहीं कहा तड़ागिये[4], बेड़ी पायन बीच ॥३५॥

करता की गति अगम है, चलु गुरु के उनमान।
धीरे धीरे पाँव दे, पहुँचोगे परमान ॥३६॥

प्रान पिंड को तजि चलै, मुआ कहै सब कोय।
जीव छता[5] जामै मरै, सूछम लखै न सोय ॥३७॥

---

(१) लोग, ससार। (२) घुसै, चढ़ै। (३) शीतल स्थान। (४) कूदना, डींग मारना। (५) आछत, मौजूद रहते।

मरिये तो मरि जाइये, छूटि परै जंजार।
ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ सौ बार ॥३८॥

———

चितावनी का अंग

कबीर गर्ब न कीजिये, काल गहे कर केस।
ना जानौं कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस ॥ १ ॥
आज काल्ह के बीच में, जंगल ह्वैगा बास।
ऊपर ऊपर हर फिरै, ढोर[1] चरैंगे घास ॥ २ ॥
हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी, केस जरै ज्यों घास।
सब जग जरता देखि करि, भये कबीर उदास ॥ ३ ॥
झूँठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन मोद।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद ॥ ४ ॥
कुसल कुसल ही पूछते, जग में रहा न कोय।
जरा[2] मुई ना भय मुआ, कुसल कहाँ से होय ॥ ५ ॥
पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जाति।
देखत ही छिपि जायगी, ज्यों तारा परभाति ॥ ६ ॥
निधड़क बैठा नाम बिनु, चेति न करै पुकार।
यह तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार ॥ ७ ॥
रात गँवाई सोय करि, दिवस गँवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय ॥ ८ ॥
कै खाना कै सोवना, और न कोई चीत।
सतगुरु सबद बिसारिया, आदि अंत का मीत ॥ ९ ॥
यहि औसर चेत्यो नहीं, पसु ज्यों पाली देह।
सत्त नाम जान्यो नहीं, अंत पड़ै मुख खेह ॥१०॥

---

(१) चौपाये। (२) वृद्ध अवस्था।

लूटि सकै तो लूटि ले, सत्त नाम भँडार ।
काल कंठ तें पकरिहै, रोकै दसौ दुवार ॥११॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत ।
अब पछतावा क्या करै, चिड़ियाँ चुग गई खेत ॥१२॥
आज कहै मैं काल्ह भजूँगा, काल्ह कहै फिर काल्ह ।
आज काल्ह के करत ही, औसर जासी चाल ॥१३॥
काल्ह करै सो आज करु, सबहि साज तेरे साथ ।
काल्ह काल्ह तू क्या करै, काल्ह काल के हाथ ॥१४॥
काल्ह करै सो आज करु, आज करै सो अब्ब ।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब ॥१५॥
पाव पलक की सुधि नहीं, करै काल्ह का साज ।
काल अचानक मारसी, ज्यों तीतर को बाज ॥१६॥
पाव पलक तो दूर है, मो पै कह्यो न जाय ।
ना जानूँ क्या होयगा, पाव बिपल के मायँ ॥१७॥
कबीर नौबति आपनी, दिन दस लेहु बजाय ।
यह पुर पट्टन[1] यह गली, बहुरि न देखौ आय ॥१८॥
जिन के नौबति बाजती, मंगल बँधते बार[2] ।
एकै सतगुरु नाम बिनु, गये जनम सब हार ॥१९॥
पाँचो नौबति बाजती, होत छतीसो राग ।
सो मंदिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग ॥२०॥
ढोल दमामा गड़गड़ी, सहनाई अरु भेरि[3] ।
अवसर चले बजाइ के, है कोइ लावै फेरि ॥२१॥
कबीर थोड़ा जीवना, माँडै बहुत मँडान ।
सबहि उभा[4] में लगि रहा, राव रंक सुल्तान ॥२२॥

---

(१) शहर । (२) वन्दनवार । (३) बाजे का नाम । (४) चिंता ।

इक दिन ऐसा होयगा, सब से पड़ै बिछोह।
राजा राना छत्रपति, क्यों नहिं सावध[1] होहि ॥२३॥
ऊजड़ खेड़े[2] ठीकरी, गढ़ि गढ़ि गये कुम्हार।
रावन सरिखा चलि गया, लंका का सरदार ॥२४॥
ऊँचा महल चुनावते, करते होड़म होड़।
सुबरन कली ढलावते, गये पलक में छोड़ ॥२५॥
कहा चुनावै मेढ़ियाँ[3], लंबी भीति उसारि[4]।
घर तो साढ़े तीन हथ, घना तो पौने चार[5] ॥२६॥
पाँच तत्त का पूतला, मानुष धरिया नाम।
दिना चार के कारने, फिरि फिरि रोकै ठाम ॥२७॥
कबीर गर्ब न कीजिये, देंही देखि सुरंग।
बिछुरे पै मेला नहीं, ज्यों केचुली भुजंग ॥२८॥
कबीर गर्ब न कीजिये, अस जोबन की आस।
टेसू फूला दिवस दस, खंखर भया पलास ॥२९॥
कबीर गर्ब न कीजिये, ऊँचा देखि अवास।
काल्ह परों भुइँ लेटना, ऊपर जमसी घास ॥३०॥
कबीर गर्ब न कीजिये, चाम लपेटे हाड़।
हय बर ऊपर छत्र तर, तौ भी देवैं गाड़ ॥३१॥
पक्की खेती देखि करि, गर्बै कहा किसानु।
अजहूँ झोला बहुत है, घर आवै तब जानु ॥३२॥
जेहि घट प्रेम न प्रीति रस, पुनि रसना नहिं नाम।
ते नर पसु संसार में, उपजि खपे बेकाम ॥३३॥
ऐसा यह संसार है, जैसा सेमर फूल।
दिन दस के व्योहार में, झूँठे रंग न भूल ॥३४॥

(१) सावधान, होशियार। (२) गाँव। (३) मढ़ी, घर। (४) ओसारा। (५) जीव का घर जो शरीर है उसका नाप साढ़े तीन हाथ होता है या बहुत लम्बा हुआ तो पौने चार हाथ।

कबीर धूल सकेलि[1] कै, पुड़ी[2] जो बाँधी येह।
दिवस चार का पेखना, अंत खेह की खेह ॥३५॥
पाँच पहर धंधे गया, तीन पहर रहे सोय।
एको घड़ी न हरि भजे, मुक्ति कहाँ तें होय ॥३६॥
कबीर मंदिर लाख का, जड़िया हीरा लाल।
दिवस चार का पेखना, बिनसि जायगा काल ॥३७॥
सपने सोया मानवा, खोल देखि जो नैन।
जीव परा बहु लूट में, ना कछु लेन न देन ॥३८॥
मरोगे मरि जाहुगे, कोई न लेगा नाम।
ऊजड़ जाइ बसाहुगे, छोड़ि के बसता गाम ॥३९॥
घर रखवाला बाहरा, चिड़िया खाया खेत।
आधा परधा ऊबरै, चेत सकै तो चेत ॥४०॥
कबीर जो दिन आज है, सो दिन नाहीं काल्ह।
चेत सकै तो चेतियो, मीच रही है ख्याल ॥४१॥
माटी कहै कुम्हार को, तूँ क्या रूँदै मोहिं।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रूँदूँगी तोहिं ॥४२॥
जिन गुरु की चोरी करी, गये नाम गुन भूल।
ते बिधना बादुर[3] रचे, रहे उरधमुख झूल ॥४३॥
सत्त नाम जाना नहीं, लागी मोटी खोरि[4]।
काया हाँड़ी काठ की, ना यह चढ़ै बहोरि ॥४४॥
सत्त नाम जाना नहीं, हूआ बहुत अकाज।
बूड़ेगा रे बापुरा, बड़े बड़ों की लाज ॥४५॥
सत्त नाम जाना नहीं, चूके अब की घात।
माटी मलत कुम्हार ज्यों, घनी सहै सिर लात ॥४६॥

(१) समेट के। (२) पुड़िया। (३) चमगादड़। (४) सराप।

मनुष मतिहीन ।

कबीर या संसार में, घना मनुष मतिहीन ।
सत्त नाम जाना नहीं, आये टापा[1] दीन्ह ॥४७॥

आया अनआया हुआ, जो राता संसार ।
ड़ा भुलावे गाफिला, गये कुबुद्धी हार ॥४८॥

कहा कियो हम आइ के, कहा करैंगे जाइ ।
इत के भये न उत्त के, चाले मूल गँवाइ ॥४९॥

कबीर गुरु की भक्ति बिनु, धृग जीवन संसार ।
धूवाँ का सा धौलहर[2], जात न लागै बार ॥५०॥

जगतहिं में हम राचिया, झूठे कुल की लाज ।
तन छीजै कुल बिनसिहै, चढ़े न नाम जहाज ॥५१॥

यह तन काँचा कुंभ[3] है, लिये फिरै था साथ ।
पका[4] लागा फूटिया, कछु नहिं आया हाथ ॥५२॥

ानी का सा बुदबुदा, देखत गया बिलाय ।
ऐसे जिउड़ा जायगा, दिन दस ठोली[5] लाय ॥५३॥

कबीर यह तन जात है, सकै तो ठौर लगाव ।
कै सेवा कर साध की, कै गुरु के गुन गाव ॥५४॥

काया मंजन क्या करै, कपड़ा धोयम धोय ।
उज्जल होइ न छूटसी, सुख नींदड़ी न सोय ॥५५॥

मोर तोर की जेवरी[6], बटि बाँधा संसार ।
दास कबीरा क्यों बँधै, जा के नाम अधार ॥५६॥

जिन जाना निज गेह[7] को, सो क्यों छोड़ै मित्त[8] ।
जैसे पर घर पाहुना, रहै उठाये चित्त ॥५७॥

आये हैं सो जायँगे, राजा रंक फकीर ।
एक सिंघासन चढ़ि चले, इक बाँधे जात जँजीर ॥५८॥

(१) अँधेरी । (२) धरहरा । (३) घड़ा मिट्टी का । (४) ठोकर । (५) ठठोल
हँसी । (६) रस्सी । (७) घर । (८) मित्र ।

जो जानहु जिव आपना, करहु जीव को सार।
जियरा ऐसा पाहुना, मिलै न दूजी बार ॥५६॥
बनिजारा का बैल ज्यों, टाँडा[1] उतर्यो आय।
एकन को दूना भया, इक चला मूल गँवाय ॥६०॥
कबीर यह तन जातु है, सकै तो राखु बहोर।
खाली हाथों वे गये, जिनके लाख करोर ॥६१॥
आस पास जोधा खड़े, सबै बजावैं गाल।
मंझ महल से लै चला, ऐसा काल कराल ॥६२॥
हाँकों[2] परबत फाटते, समुँदर घूँट भराय।
ते मुनिवर धरती गले, क्या कोइ गर्ब कराय ॥६३॥
या दुनिया में आइ के, छाँड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना होय सो लेइ लै, उठी जात है पैंठ ॥६४॥
यह दुनिया दुइ रोज की, मत कर या से हेत।
गुरु चरनन से लागिये, जो पूरन सुख देत ॥६५॥
तन सराय मन पाहरू[3], मनसा उतरी आय।
कोउ काहू का है नहीं, (सब) देखा ठोंक बजाय ॥६६॥
मैं मैं बड़ी बलाय है, सको तो निकसो भागि।
कहै कबीर कब लगि रहै, रुई लपेटी आगि ॥६७॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजै, और ठगे दुख होय ॥६८॥
मौत बिसारी बावरे, अचरज कीया कौन।
तन माटी मिलि जायगा, ज्यों आटे में नोन ॥६९॥
जनम मरन दुख याद कर, कूड़े काम निवार।
जिम जिन पंथों चालना, सोई पंथ सम्हार ॥७०॥

---

(१) लदनी। (२) आवाज़ से। (३) पहरेदार।

कबीर खेत किसान का, मिरगों खाया झाड़ ।
खेत बिचारा क्या करै, जो धनी करै नहिं बाड़[1] ॥७१॥

बासर[2] सुख ना रैन सुख, ना सुख सपने माहिं ।
जे नर बिछुड़े नाम से, तिन को धूप न छाहिं ॥७२॥

कबीर सोता क्या करै, क्यों नहिं देखै जाग ।
जा के सँग से बीछुड़ा, वाही के सँग लाग ॥७३॥

कबीर सोता क्या करै, उठि कै जपो दयार[3] ।
एक दिना है सोवना, लम्बे पाँव पसार ॥७४॥

कबीर सोता क्या करै, सोते होय अकाज ।
ब्रह्मा का आसन डिगा, सुनी काल की गाज ॥७५॥

अपने पहरे जागिये, ना पड़ि रहिये सोय ।
ना जानौं छिन एक में, किस का पहरा होय ॥७६॥

चकवी बिछुरी रैन की, आनि मिलै परभात ।
जे नर बिछुरे नाम से, दिवस मिलैं नहिं रात ॥७७॥

दीन गँवायो दुनी सँग, दुनी न चाली साथ ।
पाँव कुल्हाड़ी मारिया, मूरख अपने हाथ ॥७८॥

कुल खोये कुल ऊबरै, कुल राखे कुल जाय ।
नाम अकुल[4] को भेंटिया, सब कुल गया बिलाय ॥७९॥

दुनिया के धोखे मुवा, चाला कुल की कानि ।
तब क्या कुल की लाज है, जब लै धरैं मसान ॥८०॥

कुल करनी के कारने, हंसा गया बिगोय ।
तब क्या कुल की लाज है, चार पाँव का होय ॥८१॥

उज्जल पहिरे कापड़े, पान सुपारी खाहिं ।
सो इक गुरु की भक्ति बिनु, बाँधे जमपुर जाहिं ॥८२॥

---

(१) टट्टी जो बचाव के लिये खेत के चारो ओर लगाते हैं; रक्षा । (२) दिन । (३) दयाल । (४) कुल से रहित ।

मलमल खासा पहिरते, खाते नागर पान।
ते भी होते मानवी, करते बहुत गुमान ॥८३॥
गोफन[1] माहीं पौढ़ते, परिमल[2] अंग लगाय।
ते सुपने दीसैं नहीं, देखत गये बिलाय ॥८४॥
मेरा संगी कोइ नहीं, सबै स्वारथी लोय।
मन परतीति न ऊपजै, जिव बिस्वास न होय ॥८५॥
कबीर बेड़ा[3] जरजरा, फूटे छेद हजार।
हरुए हरुए[4] तरि गये, बूड़े जिन सिर भार ॥८६॥
डागल ऊपर दौड़ना, सुख नींदड़ी न सोय।
पुन्नों पाया दिवसड़ा, ओछी ठौर न खोय ॥८७॥
मैं भँवरा तोहिं बरजिया, बन बन बास न लेय।
अटकैगा कहुँ बेल से, तड़पि तड़पि जिय देय ॥८८॥
बाड़ी के बिच भँवर था, कलियाँ लेता बास।
सो तो भँवरा उड़ि गया, तजि बाड़ी की आस ॥८९॥
दुनियाँ सेती दोस्ती, होय भजन में भंग।
एकाएकी गुरू से, कै साधन कौ संग ॥९०॥
भय बिनु भाव न ऊपजै, भय बिनु होय न प्रीति।
जब हिरदे से भय गया, मिटी सकल रस रीति ॥९१॥
भय से भक्ति करै सबै, भय से पूजा होय।
भय पारस है जीव को, निर्भय होय न कोय ॥९२॥
डर करनी डर परम गुरु, डर पारस डर सार।
डरत रहै सो ऊबरै, गाफिल खावै मार ॥९३॥
खलक मिला खाली हुआ, बहुत किया बकबाद।
बाँझ हिलावै पालना, ता में कौन सवाद ॥९४॥

---

(१) गुफा। (२) सुगंधि। (३) नाव। (४) हलक हलके।

यह जग कोठी काठ की, चहुँ दिसि लागी आगि।
भीतर रहा सो जरि मुआ, साधू उबरे भागि ॥९५॥
यहि बेरिया तो फिरि नहीं, मन में देखु बिचार।
आया लाभ के कारने, जनम जुवा मत हार ॥९६॥
बैल गढ़ंता नर गढ़ा, चूका सींग अरु पोंछ[1]।
एकहि गुरु के नाम बिनु, धिक दाढ़ी धिक मोंछ ॥९७॥
यह मन फूला बिषय बन, तहाँ न लाओ चीत।
सागर क्यों ना उड़ि चलो, सुनो बैन मन मीत ॥९८॥
कहै कबीर पुकारि के, चेतै नाहीं कोय।
अब की बेरिया चेतिहै, सो साहिब का होय ॥९९॥
मनुष जनम नर पाइ कै, चूकै अब की घात।
जाय परै भव चक्र में, सहै घनेरी लात ॥१००॥
लोग भरोसे कौन के, बैठि रहे अरगाय[2]।
ऐसे जियरा जम लुटै, भेंड़हिं लुटै कसाय[3] ॥१०१॥
ऐसी गति संसार की, ज्यों गाडर की ठाट[4]।
एक पड़ा जेहि गाड़[5] में, सबै जायँ तेहि बाट ॥१०२॥
भ्रम का बाँधा ये जगत, यहि बिधि आवै जाय।
मानुष जनमहिं पाइ नर, काहे को जहडाय[6] ॥१०३॥
धोखे धोखे जुग गया, जनमहिं गया सिराय[7]।
थिति[8] नहिं पकड़ी आपनी, यह दुख कहाँ समाय ॥१०४॥
केतो कहौं बुझाई कै, पर हथ जीव बिकाय।
मैं खैंचौं सतलोक को, सीधा जमपुर जाय ॥१०५॥

---

(१) बैल का जन्म होना चाहिये था पर बिधना सींग और पोंछ लगाना भूल गया जिस से मनुष्य की सूरत बन गई फिर जो भगवन्त भजन न किया तो ऐसी दाढ़ी और मोंछ को धिक्कार है। (२) अलग होके, बेपरवाह होके। (३) जैसे बकरे को कसाई मारता है ऐसे ही निरदैपन से जम तुम्हारा बध करेगा। (४) भेंड़ का झुंड। (५) गड़हा। (६) ठगाय। (७) बीत। (८) स्थिरता।

तू मत जाने बावरे, मेरा है सब कोय।
पिंड प्रान से बँधि रहा, सो अपना नहिं होय ॥१०६॥

ऐसा संगी कोइ नहीं, जैसा जीव रु देंह।
चलती बेरियाँ रे नरा, डारि चला ज्यों खेह ॥१०७॥

एक सीस का मानवा, करता बहुतक हीस[1]।
लंकापति रावन गया, बीस भुजा दस सीस ॥१०८॥

जात सबन कहँ देखिया, कहहिं कबीर पुकार।
चेता[2] होहु तो चेति ल्यो, दिवस परत है धार[3] ॥१०९॥

कहै कबीर पुकारि के, ये कलऊ बेवहार।
एक नाम जाने बिना, बूड़ि मुआ संसार ॥११०॥

मूए हो मरि जाहुगे, मुए की बाजी ढोल।
सुपन सनेही जग भया, सहिदानी रहिगो बोल ॥१११॥

नाम मछंदर ना बचे, गोरखदत्त रु व्यास।
कहै कबीर पुकारि के, परे काल की फाँस ॥११२॥

झूठ झूठ कँह डारहू, मिथ्या यह संसार।
तेहिं कारन में कहत हों, जा तें होइ उबार ॥११३॥

झूठा सब संसार है, कोऊ न अपना मीत।
सत्त नाम को जानि ले, चलै सो भौजल जीत ॥११४॥

बहुतै तन को साजिया, जनमो भरि दुख पाय।
चेतत नाहीं बावरे, मोर मोर गुहराय ॥११५॥

खाते पीते जुग गया, अजहुँ न चेतो आय।
कहै कबीर पुकारि कै, जीव अचेते जाय ॥११६॥

परदे परदे चलि गया, समुझि परी नहिं बानि।
जो जानै सो बाचिहै, हात सकल की हानि ॥११७॥

---

(१) हिस। (२) समझदार। (३) धाड़=डाका।

पाँच तत्त का पूतरा, मानुष धरिया नाम।
एक तत्त के बीछुरे, बिकल भया सब ठाम ॥११८॥

इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी[1] को कहै, तन की नारी[2] जाहिँ ॥११९॥

भँवर बिलंबे[3] बाग में, बहु फूलन की आस।
जीव बिलंबे बिषय में, अंतहुँ चलै निरास ॥१२०॥

काल खड़ा सिर ऊपरे, जागु बिराने मिंत[4]।
जा का घर है गैल में, क्यों सोवै निःचिंत ॥१२१॥

काया काठी काल घुन, जतन जतन घुनि खाय।
काया माहीं काल है, मर्म न कोऊ पाय ॥१२२॥

चलती चक्की देखि कै, दिया कबीरा रोय।
दुइ पट[5] भीतर आइकै, साबित गया न कोय ॥१२३॥

काल चक्र चक्की चलै, सदा दिवस अरु रात।
सगुन अगुन दुइ पाटला, ता में जीव पिसात ॥१२४॥

आसै पासै जो फिरै, निपट पसावै सोय।
कीला से लागा रहै, ता को बिघन न होय[6] ॥१२५॥

चक्की चली गुपाल की, सब जब पीसा झारि।
रूढ़ा[7] सबद कबीर का, डारा पाट उखारि ॥१२६॥

साहू से भा चोरवा, चोरन से भयो जुज्झ।
तब जानैगो जीयरा, मार पड़ैगी तुज्झ ॥१२७॥

सेमर सुवना सेइया, दुइ ढेंढ़ी की आस।
ढेंढ़ी फूटि चटाक दे, सुवना चला निरास ॥१२८॥

---

(१) स्त्री। (२) नाड़ी। (३) आशक्त हुए। (४) मित्र। (५) चक्की के दो पल्ले। (६) मुँह से सभी कहते हैं कि काल की चक्की चल रही है पर सच्चे मन से कोई नहीं मानता नहीं तो कीला जिसकी सत्ता से वह घूमती है अर्थात् भगवत को ऐसा दृढ़ कर पकड़े कि आवागवन से रहित हो जाय (७) बलवान।

हे मतिहीनी माछरी, धीमर मीत कियाय।
करि समुद्र से रूसना, छीलर[1] चित्त दियाय ॥१४९॥

काँची काया मन अथिर, थिर थिर काज करंत।
ज्यों ज्यों नर निधड़क फिरत, त्यों त्यों काल हसंत ॥१५०॥

टाला टूली दिन गया, ब्याज बढ़ंता जाय।
ना गुरु भज्यो न खत कट्यो[2], काल पहूँचा आय ॥१५१॥

कबीर पैंड़ा[3] दूर है, बीचि पड़ी है रात।
ना जानौं क्या होयगा, ऊगे तें परभात[4] ॥१५२॥

हम जानैं थे खायँगे, बहुत जमीं बहु माल।
ज्यों का त्यों ही रहि गया, पकरि लै गया काल ॥१५३॥

चहुँ दिसि पक्का कोट था, मंदिर नगर मँझार।
खिड़की खिड़की पाहरू, गज बंधा दरबार ॥१५४॥

चहुँ दिसि सूरा बहु खड़े, हाथ लिये हथियार।
रहि गये सबही देखते, काल ले गया मार ॥१५५॥

संसय काल सरीर में, बिषम[5] काल है दूर।
जा को कोई ना लखै, जारि करै सब धूर ॥१५६॥

दव[6] की दाही लाकड़ी, ठाढ़ी करै पुकार।
अब जो जाउँ लुहार घर, डाहै दूजी बार ॥१५७॥

मेरा बीर[7] लुहारिया, तू मत जारै मोहिं।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं जारौंगी तोहिं ॥१५८॥

जरनेहारा भी मुआ, मुआ जरावनहार।
हैहै करते भी मुए, का से करौं पुकार ॥१५९॥

भाई बीर बटाउआ, भरि भरि नैनन रोय।
जा का था सो ले लिया, दीन्हा था दिन दोय ॥१६०॥

---

(१) छिछला पानी। (२) कर्म की रेखा नहीं कटी या लेखा नहीं चुका। (३) रास्ता। (४) सवेरा। (५) कठिन। (६) अगिन। (७) भाई।

निःचय काल गरासही, बहुत कहा समुझाय।
कह कबीर मैं का कहौं, देखत ना पतियाय ॥१६१॥
मरती बिरिया पुन[1] करै, जीवत बहुत कठोर।
कह कबीर क्यों पाइये, काढ़े खाँडे चोर[2] ॥१६२॥
कबीर बैद बुलाइया, पकड़ि दिखाई बाहिं।
बैद न बेदन[3] जानही, कफ्फ करेजे माहिं ॥१६३॥
कबीर यह तन बन भया, कर्म जो भया कुहारि[4]।
आप आप को काटिहै, कहै कबीर बिचारि ॥१६४॥
कबीर सतगुरु सरन की, जो कोइ छाड़ै ओट।
घन अहरन बिच लोह ज्यों, घनी सहै सिर चोट ॥१६५॥
महलन माहीं पौढ़ते, परिमल अंग लगाय।
ते सुपने दीसैं नहीं, देखत गये बिलाय ॥१६६॥
जंगल ढेरी राख की, उपरि उपरि हरियाय।
ते भी होते मानवा, करते रँग रलियाय ॥१६७॥
तेरा संगी कोइ नहीं, सबै स्वारथी लोय।
मन परतीति न ऊपजै, जिव बिस्वास न होय ॥१६८॥
जा को रहना उत्त घर, सो क्यों लोड़ै[5] इत्त।
जैसे पर घर पाहुना, रहै उठाये चित्त ॥१६९॥
ज्यों कोरी रेजा बुनै, नियरा आवै छोर।
ऐसा लेखा मीच का, दौरि सकै तौ दौर ॥१७०॥
कोठे ऊपर दौरना, सुख नींदरी न सोय।
पुन्ये पाया देहरा, ओछी ठौर न खोय ॥१७१॥
मैं मैं मेरी जनि करै, मेरी मूल बिनासि।
मेरी पग का पैकड़ा[6], मेरी गल की फाँसि ॥१७२॥

---

(१) पुन्य दान। (२) जब चोर तलवार निकाले खड़ा है उसको कैसे पकड़ सकोगे। (३) दुक्ख, दरद। (४) कुल्हाड़ी। (५) चाहै या चाह करै। (६) बेड़ी।

कबीर नाव है झाँझरी, कूरा[1] खेवनहार।
हलके हलके तिर गये, बूड़े जिन सिर भार ॥१७३॥

कबीर नाव तो झाँझरी, भरी बिराने भार।
खेवट से परिचय नहीं, क्योंकर उतरै पार ॥१७४॥

कायथ[2] कागद काढ़िया, लेखा वार न पार।
जब लगि स्वास सरीर में, तब लगि नाम सँभार ॥१७५॥

कबीर रसरी पाँव में, कहा सोवै सुख चैन।
स्वास नगाड़ा कूँच का, बाजत है दिन रैन ॥१७६॥

राज दुआरे बंधिया, मूड़ी धुनै गजंद[3]।
मनुष जनम कब पाइहौं, भजिहौं परमानंद ॥१७७॥

मनुष जनम दुर्लभ अहै, होय न बारंबार।
तरवर से पत्ता झरै, बहुरि न लागै डार ॥१७८॥

काल चिचावत[4] है खड़ा, जागु पियारे मिंत।
नाम सनेही जगि रहा, क्यों तू सोय निचिंत ॥१७९॥

जरा आय जोरा किया, पिय आपन पहिचान।
अंत कछू पल्ले परै, ऊठत है खरिहान ॥१८०॥

बिरिया बीती बल घटा, केस पलटि भये धौर[5]।
बिगरा काज सँवारि लै, फिरि छूटन नहिं ठौर ॥१८१॥

घड़ी जो बाजै राज दर, सुनता है सब कोय।
आयु घटै जोबन खिसै, कुसल कहाँ तें होय ॥१८२॥

कै कूसल अनजान कै, अथवा नाम जपंत।
जनम मरन होवै नहीं, तौ बूझौ कुसलंत ॥१८३॥

पात झरंता यौं कहै, सुनु तरवर बनराय।
अब के बिछुरे ना मिलैं, दूर परैंगे जाय ॥१८४॥

---

(१) कुटिल। (२) चित्रगुप्त। (३) हाथी। (४) चिल्लाता है। (५) सफेद।

जो ऊगे सो अंथवै[1], फूलै सो कुम्हिलांय ।
जो चुनिये सो ढरि परै, जामै[2] सो मरि जाय ॥१८५॥
निधड़क बैठा नाम बिनु, चेति न करै पुकार ।
यह तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार ॥१८६॥
तीन लोक पिँजरा भया, पाप पुन्न दोउ जाल ।
सकल जीव सावज[3] भये, एक अहेरी काल ॥१८७॥
कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गया सब तार ।
जंत्र बिचारा क्या करै, चला बजावनहार ॥१८८॥
यह जिव आया दूर तें, जाना है बहु दूर ।
बिच के बासे[4] बसि गया, काल रहा सिर पूर ॥१८९॥
कबीर गाफिल क्या करै, आया काल नजीक ।
कान पकरि के लै चला, ज्यों अजयाहिं खटीक[5] ॥१९०॥
बालपना भोले गयो, और जुबा महमंत ।
वृद्धपने आलस भयो, चला जरंते अंत ॥१९१॥
साथी हमरे चलि गये, हम भी चालनहार ।
कागद में बाकी रही, ता तें लागी बार ॥१९२॥
घाट जगाती धरमराय, सब का झारा लेहि ।
सत्त नाम जाने बिना, उलटि नरक में देहि ॥१९३॥
जिन पै नाम निसान है, तिन्ह अटकावै कौन ।
पुरुष खजाना पाइया, मिटि गया आवागौन ॥१९४॥
खुलि खेलो संसार में, बाँधि न सक्कै कोय ।
घाट जगाती क्या करै, सिर पर पोट[6] न होय ॥१९५॥

---

(१) अस्त होय, डूबै। (२) जन्मै, उगै। (३) शिकार। (४) पड़ाव, टिकने की जगह। (५) जैसे बकरी को खटिक ले जाता है। (६) कर्म का बोझ।

कबीर नाव है झाँझरी, कूरा[1] खेवनहार।
हलके हलके तिर गये, बूड़े जिन सिर भार ॥१७३॥

कबीर नाव तो झाँझरी, भरी बिराने भार।
खेवट से परिचय नहीं, क्योंकर उतरै पार ॥१७४॥

कायथ[2] कागद काढ़िया, लेखा वार न पार।
जब लगि स्वास सरीर में, तब लगि नाम सँभार ॥१७५॥

कबीर रसरी पाँव में, कहा सोवै सुख चैन।
स्वास नगाड़ा कूँच का, बाजत है दिन रैन ॥१७६॥

राज दुआरे बंधिया, मूड़ी धुनै गजंद[3]।
मनुष जनम कब पाइहौं, भजिहौं परमानंद ॥१७७॥

मनुष जनम दुर्लभ अहै, होय न बारंबार।
तरवर से पत्ता झरै, बहुरि न लागै डार ॥१७८॥

काल चिचावत[4] है खड़ा, जागु पियारे मिंत।
नाम सनेही जगि रहा, क्यों तू सोय निचिंत ॥१७९॥

जरा आय जोरा किया, पियं आपन पहिचान।
अंत कछू पल्ले परै, ऊठत है खरिहान ॥१८०॥

बिरिया बीती बल घटा, केस पलटि भये धौर[5]।
बिगरा काज सँवारि लै, फिरि छूटन नहिं ठौर ॥१८१॥

घड़ी जो बाजे राज दर, सुनता है सब कोय।
आयु घटै जोबन खिसै, कुसल कहाँ तें होय ॥१८२॥

कै कूसल अनजान के, अथवा नाम जपंत।
जनम मरन होवै नहीं, तौ बूझौ कुसलंत ॥१८३॥

पात झरंता यों कहै, सुनु तरवर बनराय।
अब के बिछुरे ना मिलैं, दूर परैंगे जाय ॥१८४॥

---

(१) कुटिल। (२) चित्रगुप्त। (३) हाथी। (४) चिल्लाता है। (५) सफ़ेद॥

जो ऊगे सो अंथवै[1], फूलै सो कुम्हिलाय।
जो चुनिये सो ढहि परै, जामै[2] सो मरि जाय ॥१८५॥

निधड़क बैठा नाम बिनु, चेति न करै पुकार।
यह तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार ॥१८६॥

तीन लोक पिँजरा भया, पाप पुन्न दोउ जाल।
सकल जीव सावज[3] भये, एक अहेरी काल ॥१८७॥

कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गया सब तार।
जंत्र बिचारा क्या करै, चला बजावनहार ॥१८८॥

यह जिव आया दूर तें, जाना है बहु दूर।
बिच के बासे[4] बसि गया, काल रहा सिर पूर ॥१८९॥

कबीर गाफिल क्या करै, आया काल नजीक।
कान पकरि के लै चला, ज्यों अजयाहिं खटीक[5] ॥१९०॥

बालपना भोले गयो, और जुवा महमंत।
वृद्धपने आलस भयो, चला जरंते अंत ॥१९१॥

साथी हमरे चलि गये, हम भी चालनहार।
कागद में बाकी रही, ता तें लागी बार ॥१९२॥

घाट जगाती धरमराय, सब का भारा लेहि।
सत्त नाम जाने बिना, उलटि नरक में देहि ॥१९३॥

जिन पै नाम निसान है, तिन्ह अटकावै कौन।
पुरुष खजाना पाइया, मिटि गया आवागौन ॥१९४॥

खुलि खेलो संसार में, बाँधि न सक्कै कोय।
घाट जगाती क्या करै, सिर पर पोट[6] न होय ॥१९५॥

---

(१) अस्त होय, डूबै। (२) जन्मै, उगै। (३) शिकार। (४) पड़ाव, टिकने की जगह। (५) जैसे बकरी को खटिक ले जाता है। (६) कर्म का बोझ।

उदारता का अंग

कबीर गुरु के मिलन की, बात सुनी हम दोय।
कै साहिब को नाम लै, कै कर ऊँचा होय ॥ १ ॥
बसंत ऋतु जाचक भया, हरषि दिया द्रुम[1] पात।
ता तें नव पल्लव[2] भया, दिया दूर नाहिँ जात ॥ २ ॥
जो जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यहि सज्जन को काम ॥ ३ ॥
हाड़ बड़ा हरि भजन कर, द्रव्य बड़ा कछु देय।
अकल बड़ी उपकार कर, जीवन का फल येह ॥ ४ ॥
कहै कबीरा देय तू, जब लगि तेरी देह।
देह खेह होइ जायगी, तब कौन कहैगा देह ॥ ५ ॥
गाँठि होय सो हाथ कर, हाथ होय सो देह।
आगे हाट न बानिया, लेना होय सो लेह ॥ ६ ॥
देह धरे का गुन यही, देह देह कछु देह।
बहुरि न देही पाइये, अब की देह सो देह ॥ ७ ॥
दान दिये धन ना घटै, नदी न घट्टै नीर।
अपनी आँखों देखिये, यों कथि कहै कबीर ॥ ८ ॥
सतही में सत बाँटई, रोटी में तें टूक।
कहै कबीर ता दास को, कबहुँ न आवै चूक ॥ ९ ॥

सहन का अंग

काँच कथीर अधीर नर, जतन करत है भंग।
साधू कंचन ताइये, चढ़ै सवाया रंग ॥ १ ॥

---

(१) पेड़। (२) पत्तियाँ।

काँच कथीर अधीर नर, ताहि न उपजै प्रेम।
कह कबीर कसनी सहै, कै हीरा कै हेम[१] ॥ २ ॥
कसत कसौटी जो टिकै, ता को सबद सुनाय।
सोई हमरा बंस है, कह कबीर समुझाय ॥ ३ ॥

विश्वास का अंग

कबीर क्या मैं चिंतहूँ, मम चिंतें क्या होय।
मेरी चिंता हरि करै, चिंता मोहिं न कोय ॥ १ ॥
साधू गाँठि न बाँधई, उदर समाना लेय।
आगे पाछे हरि खड़े, जब माँगै तब देय ॥ २ ॥
चिंता न कर अचिंत रहु, देनहार समरत्थ।
पसू पखेरू जीव जंत, तिन के गाँठि न हत्थ ॥ ३ ॥
अंडा पालै काछुई, बिन थन राखै पोख[२]।
यों करता सब की करै, पालै तीनिउ लोक ॥ ४ ॥
पौ फाटी पगरा[३] भया, जागे जीवा जून।
सब काहू को देत है, चोंच समाना चून ॥ ५ ॥
सच नाम से मन मिला, जम से परा दुराय।
मोहिं भरोसा इष्ट का, बंदा नरक न जाय ॥ ६ ॥
कर्म करीमा लिखि रहा, अब कछु लिखा न होय।
मासा घटै न तिल बढ़ै, जो सिर फोड़ै कोय ॥ ७ ॥
साईं इतना दीजिये, जा में कुटुँब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥ ८ ॥
जा के मन बिस्वास है, सदा गुरू हैं संग।
कोटि काल झकझोलही, तऊ न ह्वै चित भंग ॥ ९ ॥

---

(१) सोना। (२) परवरिश। (३) सवेरा।

खोज पकरि बिस्वास गहु, धनी मिलैंगे आय।
अजया[1] गज मस्तक चढ़ी, निरभय कोंपल खाय ॥१०॥
पाँडर[2] पिंजर मन भँवर, अरथ अनूपम बास।
एक नाम सींचा अमी, फल लागा बिस्वास ॥११॥
पद गावै लौलीन ह्वै, कटै न संसय फाँस।
सबै पछोरै थोथरा, एक बिना बिस्वास ॥१२॥
गाया जिन पाया नहीं, अनगाये तें दूर।
जिन गाया बिस्वास गहि, ता के सदा हजूर ॥१३॥
गावनही में रोवना, रोवनही में राग।
एक बनहिँ में घर करै, एक घरहिँ बैराग ॥१४॥
जो सच्चा बिस्वास है, तो दुख क्यों ना जाय।
कहै कबीर बिचारि के, तन मन देहि जराय ॥१५॥
बिस्वासी ह्वै गुरु भजै, लोहा कंचन होय।
नाम भजै अनुराग तें, हरष सोक नहिं दोय ॥१६॥

दुविधा का अंग

दुविधा जा के मन बसै, दयावंत जिउ नाहिँ।
कबीर त्यागो ताहि को, भूलि देउ जनि बाहिँ ॥ १ ॥
हिरदे माहीं आरसी, मुख देखा नहिँ जाय।
मुख तौ तबही देखई, दुविधा देइ बहाय ॥ २ ॥
पढ़ा गुना सीखा सभी, मिटी न संसय सूल।
कह कबीर का से कहूँ, यह सब दुख का मूल ॥ ३ ॥

---

(१) बकरी। (२) चमेली के पेड़ की एक जाति।

ींटी चावल लै चली, बिच में मिलि गइ दार[1]।
हद कबीर दोउ ना मिलै, इक लै दूजी डार ॥ ४ ॥
ागा पीछा दिल करै, सहजै मिलै न आय।
ो बासी जम लोक का, बाँधा जमपुर जाय ॥ ५ ॥
ात्त नाम कड़ुवा लगै, मीठा लागै दाम।
ुबिधा में दोऊ गये, माया मिली न राम ॥ ६ ॥
ाकत तकावत रहि गया, सका न बेझी[2] मारि।
ाबै तीर खाली परा, चला कमाना डारि ॥ ७ ॥
ागर चैन तब जानिये, (जब) एकै राजा होय।
ाहि दुराजी[3] राज में, सुखी न देखा कोय ॥ ८ ॥
ंसा खाया सकल जग, संसा किनहुँ न बद्ध।
ो बेधा गुरु अच्छरा, तिन संसा चुनि चुनि खद्ध ॥ ९ ॥

मध्य का अंग

ाया कहैं ते बावरे, खोया कहैं ते क्रूर।
ाया खोया कछु नहीं, ज्यों का त्यों भरपूर ॥ १ ॥
भजूँ तो को है भजन को, तजूँ तो को है आन।
भजन तजन के मध्य में, सो कबीर मन मान ॥ २ ॥
लेउँ तो महा पतिग्रह, देऊँ तो भोगंत।
लेन देन के मध्य में, सो कबीर निज संत ॥ ३ ॥
हिंदू कहूँ तो मैं नहीं, मुसल्मान भी नाहिं।
पाँच तत्व का पूतला, गैबी खेलै माहिं ॥ ४ ॥

---

(१) दाल। (२) निशाना। (३) माया और ब्रह्म।

गैबी आया गैब तें, इहाँ लगाया ऐब।
उलटि समाना गैब में, तब कहँ रहिया ऐब ॥ ५ ॥

अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप ॥ ६ ॥

सहज का अंग

सहज सहज सब कोउ कहै, सहज न चीन्है कोय।
जा सहजे साहिब मिलै, सहज कहावै सोय ॥ १ ॥

सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्है कोय।
जा सहजे बिषया तजै, सहज कहावै सोय ॥ २ ॥

सहजै सहजै सब भया, मन इंद्री का नास।
निःकामी से मन मिला, कटी करम की फाँसि ॥ ३ ॥

सहजै सहजै सब गया, सुत बित काम निकाम।
एकमेक ह्वै मिलि रहा, दास कबीरा नाम ॥ ४ ॥

जो कछु आवै सहज में, सोई मीठा जान।
कडुआ लागै नीम सा, जा में ऐंचा तान ॥ ५ ॥

सहज मिलै सो दूध सम, माँगा मिलै सो पानि।
कहै कबीर वह रक्त सम, जा में ऐंचा तानि ॥ ६ ॥

काहे को कलपत फिरै, दुखी होत बेकार।
सहजै सहजै होयगा, जो रचिया करतार ॥ ७ ॥

जो कलपै तो दूर है, अनकलपै ह्वै सोय।
सतगुरु मेटी कलपना, सहजै होय सो होय ॥ ८ ॥

अनुभव ज्ञान का अंग

आतम अनुभव ज्ञान की, जो कोइ पूछै बात।
सो गूँगा गुड़ खाइ कै, कहै कौन मुख स्वाद॥ १॥
ज्यों गूँगे के सैन को, गूँगा ही पहिचान।
त्यों ज्ञानी के सुक्ख को, ज्ञानी होय सो जान॥ २॥
नर नारी के स्वाद को, खसी[1] नहीं पहिचान।
तत[2] ज्ञानी के सुक्ख को, अज्ञानी नहिँ जान॥ ३॥
आतम अनुभव सुक्ख की, का कोइ बूझै बात।
कै जो कोई जानई, कै अपनो ही गात॥ ४॥
आतम अनुभव जब भयो, तब नहिँ हर्ष बिषाद।
चित्त दीप सम ह्वै रह्यो, तजि करि बाद बिबाद॥ ५॥
कागद लिखै सो कागदी, की व्योहारी जीव।
आतम दृष्टि कहाँ लिखै, जित देखै तित पीव॥ ६॥
लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखि की बात।
दुलहा दुलहिन मिलि गये, फीकी परी बरात॥ ७॥
भरो होय सो रीतई, रीतो[3] होय भराय।
रीतो भरो न पाइये, अनुभव सोई कहाय॥ ८॥

वाचक ज्ञान का अंग

ज्यों अँधरे को हाथिया, सब काहू को ज्ञान।
अपनी अपनी कहत हैं, का को धरिये ध्यान॥ १॥
अँधरन को हाथी सही, हैं साचे सगरे।
हाथन की टोई कहैं, आँखिन के अँधरे॥ २॥

---

(१) हिजड़ा। (२) तत्व। (३) खाली।

ज्ञानी से कहिये कहा, कहत कबीर लजाय।
अंधे आगे नाचते, कला अकारथ जाय॥ ३॥

ज्ञानी तो निर्भय भया, मानै नाहीं संक।
इन्द्रिन के रे बसि परा, भुगतै नर्क निसंक॥ ४॥

ज्ञानी मूल गँवाइया, आप भये करता।
ता तें संसारी भला, जो सदा रहै डरता॥ ५॥

ज्ञानी भूले ज्ञान कथि, निकट रह्यो निज रूप।
बाहर खोजैं बापुरे, भीतर बस्तु अनूप॥ ६॥

भीतर तो भेद्यो नहीं, बाहर कथैं अनेक।
जो पै भीतर लखि परै, भीतर बाहर एक॥ ७॥

समझ सरीखी बात है, कहन सरीखी नाहिँ।
जेते ज्ञानी देखिये, तेते संसय माहिँ॥ ८॥

करनी और कथनी का अंग

कथनी मीठी खाँड़ सी, करनी बिष की लोय।
कथनी तजि करनी करै, तो बिष से अमृत होय॥ १॥

करनी गर्ब-निवारनी, मुक्ति स्वारथी सोय।
कथनी तजि करनी करै, तो मुक्ताहल होय॥ २॥

कथनी के सूरे घने, थोथे बाँधे तीर।
बिरह बान जिन के लगा, तिन के बिकल सरीर॥ ३॥

कथनी बदनी छाड़ि के, करनी से चित लाय।
नरहिँ नीर प्याये बिना, कबहूँ प्यास न जाय॥ ४॥

करनी बिन कथनी कथै, अज्ञानी दिन रात।
कूकर ज्यों भूँसत फिरै, सुनी सुनाई बात॥ ५॥

करनी बिन कथनी कथै, गुरुपद लहै न सोय।
बातों के पकवान से, धापा नाहीं कोय ॥ ६ ॥
लाया साखि बनाय कर, इत उत अच्छर काट।
कहै कबीर कब लग जिये, जूठी पत्तल चाट ॥ ७ ॥
पढ़ि औरन समझावई, मन नहिं बाँधै धीर।
रोटी का संसय पड़ा, यों कहि दास कबीर ॥ ८ ॥
पानी मिलै न आप को, औरन बकसत छीर।
आपन मन निस्चल नहीं, और बँधावत धीर ॥ ९ ॥
करनी करै सो पुत्र हमारा, कथनी कथै सो नाती।
रहनी रहै सो गुरू हमारा, हम रहनी के साथी ॥१०॥
कथनी करि फूला फिरै, मेरे हृदय उचार।
भाव भक्ति समझै नहीं, अंधा मूढ़ गँवार ॥११॥
कथनी थोथी जगत में, करनी उत्तम सार।
कह कबीर करनी सबल, उतरै भौजल पार ॥१२॥
पद जोरै साखी कहै, साधन परि गइ रोस।
काढ़ा जल पीवै नहीं, काढ़ि पियन की हौंस ॥१३॥
करनी को रज[1] मानही, कथनी मेरु[2] समान।
कथता बकता मरि गया, मूरख मूढ़ अजान ॥१४॥
जैसी मुख तें नीकसै, तैसी चालै नाहिं।
मनुष नहीं वे स्वान गति, बाँधे जमपुर जाहिं ॥१५॥
जैसी मुख तें नीकसै, तैसी चालै चाल।
तेहि सतगुरु नियरे रहै, पल में करै निहाल ॥१६॥
कबीर करनी क्या करै, जो गुरु नाहिं सहाय।
जेहि जेहि डारी पग धरै, सो सो निव निव जाय ॥१७॥

---

(१) धूल, ज़र्रा। (२) पहाड़।

करनी करनी सब कहै, करनी माहिँ बिबेक।
वह करनी बहि जान दे, जो नहिँ परखै एक ॥१८॥
कथनी कथा तो क्या हुआ, करनी ना ठहराय।
कलावंत[1] का कोट ज्योँ, देखत ही ढहि जाय ॥१९॥
कथनी काँची हो गई, करनी करी न सार।
स्रोता बकता मरि गये, मूरख अनँत अपार ॥२०॥
कूकस[2] कूटै कनि[3] बिना, बिन करनी का ज्ञान।
ज्योँ बंदूक गोली बिना, भड़कि न मारै आन ॥२१॥
कथनी को धीजूँ[4] नहीं, करनी मेरा जीव।
कथनी करनी दोउ थकी, (तब) महल पधारे पीव ॥२२॥
कथते हैं करते नहीं, मुख के बड़े लबार।
मुँहड़ा काला होयगा, साहिब के दरबार ॥२३॥
कथते हैं करते सही, साच सरोतर सोय।
साहिब के दरबार में, आठ पहर सुख होय ॥२४॥
कबीर करनी आपनी, कबहुँ न निस्फल जाय।
सात समुँद आड़ा पड़ै, मिलै अगाऊ आय ॥२५॥
जो करनी अन्तर बसै, निकसै मुख की बाट।
बोलत ही पहिचानिये, चोर साहु को घाट ॥२६॥
चोर चुराई तूँबड़ी, गाड़े पानी माहिँ।
वह गाड़े तेँ ऊभ्रलै, (योँ) करनी छानी[5] नाहिँ ॥२७॥
कथनी को तो भानि कै, करनी देइ बहाय।
दास कबीरा योँ कहै, ऐसा होय तो आय ॥२८॥
साखी कहै गहै नहीं, चाल चली नहिँ जाय।
सलिल मोह नदिया बहै, पाँव नहीं ठहराय ॥२९॥

(१) बाज़ीगर। (२) भूसी। (३) गल्ला, मींगी। (४) चाहूँ। (५) छिपी, ढकी।

जैसी करनी जासु की, तैसी भुगतै सोय।
बिन सतगुरु की भक्ति के, जन्म जन्म दुख होय ॥३०॥
मारग चलते जो गिरै, ता को नाहीं दोस।
कह कबीर बैठा रहै, ता सिर करड़े कोस ॥३१॥

———

सार गहनी का अंग

साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय ॥ १ ॥
पहिले फटकै छाँटि कै, थोथा सब उड़ि जाय।
उत्तम भाँड़े पाइया, जो फटके ठहराय ॥ २ ॥
सतसंगति है सूप ज्यों, त्यागै फटकि असार।
कह कबीर गुरु नाम लै, परसै नाहिं बिकार ॥ ३ ॥
औगुन को तो ना गहै, गुनहीं को लै बीन।
घट घट महकै[1] मधुप[2] ज्यों, परमातम लै चीन्ह ॥ ४ ॥
हंसा पय को काढ़ि लै, छीर नीर निरवार।
ऐसे गहै जो सार को, सो जन उतरै पार ॥ ५ ॥
छीर रूप सतनाम है, नीर रूप व्यवहार।
हंस रूप कोइ साध है, तन का छाननहार ॥ ६ ॥
पारा कंचन काढ़ि लै, जो रे मिलावै आन।
कहै कबीरा सार मत, परगट किया बखान ॥ ७ ॥
क्षीर छाड़ि पय को गहै, जो रे गऊ का बच्छ।
औगुन छाड़ै गुन गहै, सार-गराही[3] लच्छ ॥ ८ ॥

———

(१) सूँघै। (२) भँवरा। (३) सार-ग्राही।

असार गहनी का अंग

कबीर कीट सुगंधि तजि, नरक गहै दिन रात।
असार-ग्राही मानवा, गहै असारहि बात ॥ १ ॥
मच्छी मल को गहत है, निर्मल बस्तुहिँ छाडि।
कहै कबीर असार मति, माँडि रहा मन माँडि ॥ २॥
आटा तजि भूसी गहै, चलनी देखु निहारि।
कबीर सारहि छाड़ि कै, करै असार अहार ॥ ३ ॥
पापी पुन्न न भावई, पापहिँ बहुत सुहाय।
माखि सुगंधी परिहरै, जहँ दुर्गंध तहँ जाय ॥ ४ ॥
रसहिँ छाड़ि छोही गहै, कोल्हू परतछ देख।
गहै असारहिँ सार तजि, हिरदे नाहिँ बिबेक ॥ ५ ॥
दूध त्यागि रक्तै गहै, लगी पयोधर[1] जोंक।
कहै कबीर असार मति, लच्छन राखै कोक[2] ॥ ६ ॥
निर्मल छाड़ै मल्ल गहै, जनम असारै खोय।
कहै कबीरा सार तजि, आपुन गये बियोग ॥ ७ ॥
बूटी बाटी पान करि, कहै दुख जो जाय।
कह कबीर सुख ना लहै, यही असार सुभाय ॥ ८ ॥

पारख का अंग

जब गुन को गाहक मिलै, तब गुन लाख बिकाय।
जब गुन को गाहक नहीं, तब कौड़ी बदले जाय ॥ १ ॥
हरि हीरा जन जौहरी, लै लै माँडी हाट।
जब रे मिलैगा पारखी, तब हीरा का साट ॥ २ ॥

---

(१) थन। (२) सरहंस जिसका अहार मछली है।

कबीर देखि के परखि ले, परखि के मुखाँ बुलाय ।
जैसी अंतर होयगी, मुख निकसैगी ताय ॥ ३ ॥
हीरा तहाँ न खोलिये, जहँ खोटी है हाट ।
कसि करि बाँधो गाठरी, उठि करि चालो बाट ॥ ४ ॥
एकहि बार परक्खिये, ना वा बारम्बार ।
बालू तोहू किरकिरी, जो छानै सौ बार ॥ ५ ॥
पिउ मोतियन की माल है, पोई काँचे धाग ।
जतन करो झटका घना, नहिँ टूटै कहुँ लागि ॥ ६ ॥
हीरा परखै जौहरी, सब्दहिँ परखै साध ।
कबीर परखै साध को, ता का मता अगाध ॥ ७ ॥
हीरा पाया परखि कै, घन में दीया आनि ।
चोट सही फूटा नहीं, तब पाई पहिचानि ॥ ८ ॥
जो हंसा मोती चुगै, काँकर क्यों पतियाय ।
काँकर माथा ना नवै, मोती मिलै तो खाय ॥ ९ ॥
हंसा देस सुदेस का, परे कुदेसा आय ।
जा का चारा मोतिया, घोंघे क्यों पतियाय ॥१०॥
हंसा बगुला एकसा, मानसरोवर माहिँ ।
बगा ढँढोरै माछरी, हंसा मोती खाहिँ ॥११॥
गावनिया के मुख बसौं, स्रोता के मैं कान ।
ज्ञानी के हिरदे बसौं, भेदी का निज प्रान ॥१२॥
किर्तनिया से कोस बिस, सन्यासी से तीस ।
गिरही के हिरदे बसौं, बैरागी के सीस ॥१३॥

अपारख का अंग

चंदन गया बिदेसड़े, सब कोइ कहै पलास ।
ज्यौं ज्यौं चूल्हे झोंकिया, त्यौं त्यौं अधकी बास ॥ १ ॥

एक अचंभा देखिया, हीरा हाट बिकाय।
परखनहारा बाहिरी, कौड़ी बदले जाय ॥ २ ॥
हीरा साहिब नाम है, हिरदे भीतर देख।
बाहर भीतर भरि रहा, ऐसा आप अलेख ॥ ३ ॥
बाद बके दम जात है, सुरति निरति लै बोल।
नित प्रति हीरा सबद का, गाहक आगे खोल ॥ ४ ॥
नाम रतन धन पाइ कै, गाँठि बाँध ना खोल।
नाहिँ पटन[1] नहिँ पारखी, नहिँ गाहक नहिँ मोल ॥ ५ ॥
जहँ गाहक तहँ मैं नहीं, मैं तहँ गाहक नाहिँ।
परिचय बिन फूला फिरै, पकर सबद की बाहिँ ॥ ६ ॥
कबीर खाँड़हिँ छाड़ि कै, काँकर चुनि चुनि खाय।
रतन गँवाया रेत में, फिर पाछे पछिताय ॥ ७ ॥
कबीर ये जग आँधरा, जैसी अंधी गाय।
बछरा था सो मरि गया, ऊभी[2] चाम चटाय ॥ ८ ॥

कबीर साहिब का साखी-संग्रह

[भाग २]

नाम का अंग

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह ॥ १ ॥
आदि नाम बीरा[1] अहै, जीव सकल ल्यौ बूझि।
अमरावै सतलोक लै, जम नहिँ पावै सूझि ॥ २ ॥
आदि नाम निज सार है, बूझि लेहु सो हंस।
जिन जान्यो निज मान को, अमर भयो सो बंस ॥ ३ ॥
आदि नाम निज मूल है, और मंत्र सब डार[2]।
कह कबीर निज नाम बिनु, बूड़ि मुआ संसार ॥ ४ ॥
कोटि नाम संसार में, ता तेँ मुक्ति न होय।
आदि नाम जो गुप्त जप, बूझै बिरला कोय ॥ ५ ॥
राम राम सब कोइ कहै, नाम न चीन्है कोय।
नाम चीन्हि सतगुरु मिलै, नाम कहावै सोय ॥ ६ ॥
ओंकार निस्चय भया, सो करता मत जान।
साचा सबद कबीर का, परदे मेँ पहिचान ॥ ७ ॥
जो जन होइहै जौहरी, रतन लेहि बिलगाय।
सोहं सोहं जपि मुआ, मिथ्या जनम गँवाय ॥ ८ ॥

---

(१) पान परवाना, हुक्मनामा। (२) शाखा।

नाम रतन धन मुज्झ में, खान खुली घट माहिँ।
सेंतमेंत ही देत हौं, गाहक कोई नाहिँ ॥ ९ ॥
सभी रसायन हम करी, नाहिँ नाम सम कोय।
रंचक घट में संचरै, सब तन कंचन होय ॥१०॥
जबहिँ नाम हिरदे धरा, भया पाप का नास।
मानो चिनगी आग की, परी पुरानी घास ॥११॥
कोइ न जम से बाचिया, नाम बिना धरि खाय।
जे जन बिरही नाम के, ता को देखि डेराय ॥१२॥
पूँजी मेरी नाम है, जा तेँ सदा निहाल।
कबीर गरजे पुरुष बल, चोरी करै न काल ॥१३॥
कबीर हमरे नाम बल, सात दीप नौखंड।
जम डरपै सब भय करैँ, गाजि रहा ब्रह्मंड ॥१४॥
नाम रतन सोइ पाइहै, ज्ञान दृष्टि जेहिँ होय।
ज्ञान बिना नहिँ पावई, कोटि करै जो कोय ॥१५॥
ज्ञान दीप परकास करि, भीतर भवन जराय।
तहाँ सुमिर सतनाम को, सहज समाधि लगाय ॥१६॥
एक नाम को जानि कै, मेटु करम का अंक।
तबहीं सो सुचि[1] पाइहै, जब जिव होय निसंक ॥१७॥
एक नाम को जानि करि, दूजा देइ बहाय।
तीरथ व्रत जप तप नहीं, सतगुरु चरन समाय ॥१८॥
जैसे फनपति[2] मंत्र सुनि, राखै फनहिँ सिकोरि।
तैसे बीरा नाम तेँ, काल रहै मुख मोरि ॥१९॥
सब को नाम सुनावहूँ, जो आवैंगो पास।
सबद हमारो सत्य है, दृढ़ राखो बिस्वास ॥२०॥

---

(१) पवित्रता। (२) साँप।

होय बिवेकी सबद का, जाय मिलै परिवार।
नाम गहै सो पहुँचई, मानहु कहा हमार ॥२१॥
सुरति समावै नाम में, जग से रहै उदास।
कह कबीर गुरु चरन में, दृढ़ राखौ बिस्वास ॥२२॥
अस अवसर नहिं पाइहौ, धरौ नाम कड़िहार[1]।
भवसागर तरि जाव तब, पलक न लागै बार ॥२३॥
आसा तो इक नाम की, दूजी आस निरास।
पानी माहीं घर करै, तौहू मरै पियास ॥२४॥
आसा तो इक नाम की, दूजी आस निवार।
दूजी आसा मारसी, ज्यों चौपर की सार[2] ॥२५॥
नाम जो रत्ती एक है, पाप जो रती हजार।
आध रती घट संचरै, जारि करै सब छार ॥२६॥
कोटि करम कटि पलक में, जो रंचक आवै नाँव।
जुग अनेक जो पुन्न करि, नहीं नाम बिनु ठाँव ॥२७॥
कबीर सतगुरु नाम में, सुरति रहै सरसार[3]।
तौ मुख तें मोती झरै, हीरा अनँत अपार ॥२८॥
सत्तनाम निज औषधी, सतगुरु दई बताय।
औषधि खाय रु पथ[4] रहै, ता की वेदन जाय ॥२९॥
कबीर सतगुरु नाम में, बात चलावै और।
तिस अपराधी जीव को, तीन लोक कित ठौर ॥३०॥
सुपनहु में बर्राइ के, धोखेहु निकरै नाम।
वा के पग की पैंतरी[5], मेरे तन को चाम ॥३१॥
कबीर सब जग निर्धना, धनवंता नहिं कोय।
धनवंता सोइ जानिये, सत्तनाम धन होय ॥३२॥

---

(१) निकालने वाला। (२) गोट। (३) मस्त। (४) परहेजी खाना। (५) जूती।

जा की गाँठी नाम है, ता के है सब सिद्धि ।
कर जोरे ठाढ़ी सबै, अष्ट सिद्धि नव निद्धि ॥३३॥
हय गय औरो सघन घन, छत्र धुजा फहराय ।
ता सुख तें भिच्छा भली, नाम भजन दिन जाय ॥३४॥
नाम जपत कुष्टी भला, चुइ चुइ परै जो चाम ।
कंचन देंह केहि काम की, जा मुख नाहीं नाम ॥३५॥
नाम लिया जिन सब लिया, सकल बेद का भेद ।
बिना नाम नरकै परा, पढ़ता चारो बेद ॥३६॥
पारस रूपी नाम है, लोहा रूपी जीव ।
जब जा पारस भेंटिहै, तब जिव होसी सीव ॥३७॥
पारस रूपी नाम है, लोह रूप संसार ।
पारस पाया पुरुष का, परखि परखि टकसार ॥३८॥
सुख के माथे सिलि परै, (जो) नाम हृदय से जाय ।
बलिहारी वा दुक्ख की, पल पल नाम रटाय ॥३९॥
कबीर सतगुरु नाम से, कोटि बिघन टरि जाय ।
राई समान बसंदरा[1], केता काठ जराय ॥४०॥
लेने को सतनाम है, देने को अन दान ।
तरने को आधीनता, बूड़न को अभिमान ॥४१॥
जैसो माया मन रम्यो, तैसो नाम रमाय ।
तारा मंडल बेधि कै, तब अमरापुर जाय ॥४२॥
नाम पीव का छोड़ि के, करै आन का जाप ।
वेस्या केरा पूत ज्यों, कहै कौन को बाप ॥४३॥
पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय ।
चित चकमक लागै नहीं, धुआँ ह्वै ह्वै जाय ॥४४॥

---

(१) आग ।

नाम बिना बेकाम है, छप्पन कोटि बिलास।
का इंद्रासन बैठिबो, का बैकुंठ निवास ॥४५॥
लूटि सकै तो लूटि ले, सत्तनाम की लूटि।
पाछे फिरि पछताहुगे, प्रान जाहिँ जब छूटि ॥४६॥

॥ सोरठा ॥

सतगुरु का उपदेस, सत्त नाम निज सार है।
यह निज मुक्ति सँदेस, सुनो संत सत भाव से ॥४७॥
क्योँ छूटै जम जाल, बहु बंधन जिव बंधिया।
काटैं दीनदयाल, कर्म फंद इक नाम से ॥४८॥
काटहु जम के फंद, जेहिँ फंदे जग फंदिया।
कटै तो होय निसंक, नाम खड़ग सतगुरु दियो ॥४९॥
तजै काग की देंह, हंस दसा की सुरति पर।
मुक्ति सँदेसा येह, सत्त नाम परमान अस ॥५०॥
सत्त नाम बिस्वास, कर्म भर्म सब परिहरै।
सतगुरु पुरवै आस, जो निरास आसा करै ॥५१॥

सुमिरन का अंग

सुमिरन से सुख होत है, सुमिरन से दुख जाय।
कह कबीर सुमिरन किये, साईं माहिँ समाय ॥ १ ॥
ाजा राना राव रँक, बड़ा जो सुमिरै नाम।
ह कबीर बड़ों बड़ा, जो सुमिरै निःकाम ॥ २ ॥
र नारी सब नरक है, जब लगि देंह सकाम।
ह कबीर सोइ पीव को, जो सुमिरै निःकाम ॥ ३ ॥
ख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय।
सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे होय ॥ ४ ॥

सुख में सुमिरन ना किया, दुख में कीया याद ।
कह कबीर ता दास की, कौन सुनै फिरियाद ॥ ५ ॥
सुमिरन की सुधि यों करो, जैसे कामी काम ।
एक पलक बिसरै नहीं, निसु दिन आठो जाम ॥ ६ ॥
सुमिरन की सुधि यों करो, ज्यों गागर पनिहार ।
हालै डोलै सुरति में, कहै कबीर बिचार ॥ ७ ॥
सुमिरन की सुधि यों करो, ज्यों सुरभी[1] सुत माहिं ।
कह कबीर चारा चरत, बिसरत कबहूँ नाहिं ॥ ८ ॥
सुमिरन की सुधि यों करो, जैसे दाम कँगाल ।
कह कबीर बिसरै नहीं, पल पल लेहि सम्हाल ॥ ९ ॥
सुमिरन से मन लाइये, जैसे नाद कुरंग[2] ।
कह कबीर बिसरै नहीं, प्रान तजै तेहि संग ॥१०॥
सुमिरन से मन लाइये, जैसे दीप पतंग ।
प्रान तजै छिन एक में, जरत न मोड़ै अंग ॥११॥
सुमिरन से मन लाइये, जैसे कीट भिरंग ।
कबीर बिसरै आप को, होय जाय तेहि रंग ॥१२॥
सुमिरन से मन लाइये, जैसे पानी मीन ।
प्रान तजै पल बीछुरे, सत कबीर कहि दीन ॥१३॥
सुमिरन सुरति लगाइ के, मुख तें कछू न बोल ।
बाहर के पट देइ के, अंतर के पट खोल ॥१४॥
माला फेरत मन खुसी, ता तें कछू न होय ।
मन माला के फेरते, घट उँजियारी होय ॥१५॥
माला फेरत जुग गया, फिरा न मनका फेर ।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर ॥१६॥

(१) गऊ । (२) मृग ।

अजपा सुमिरन घट बिषे, दीन्हा सिरजनहार।
ताही से मन लगि रहा, कहै कबीर विचार ॥१७॥
कबीर माला मनहिँ की, और संसारी भेख।
माला फेरे हरि मिलैँ, तो गले रहट के देख ॥१८॥
कबीर माला काठ की, बहुत जतन का फेर।
माला स्वास उस्वास की, जा में गाँठ न मेर ॥१९॥
माला मो से लड़ि पड़ी, का फेरत हौ मोय।
मन कै माला फेरि ले, गुरु से मेला होय ॥२०॥
क्रिया करै अँगुरी गनै, मन धावै चहुँ ओर।
जेहि फेरे साईँ मिलै, सो भया काठ कठोर ॥२१॥
माला फेरे कहा भयो, हृदय गाँठि नहिँ खोय।
गुरु चरनन चित राचिये, तो अमरापुर जोय ॥२२॥
बाहर क्या दिखलाइये, अंतर जपिये नाम।
कहा महोला खलक से, पड़ा धनी से काम ॥२३॥
सहजेही धुन होत है, हर दम घट के माहिँ।
सुरत सबद मेला भया, मुख की हाजत नाहिँ ॥२४॥
माला तो कर मेँ फिरै, जीभ फिरै मुख माहिँ।
मनुवाँ तो दहु दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिँ ॥२५॥
तन थिर मन थिर बचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कह कबीर इस पलक को, कलप न पावै कोय ॥२६॥
जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मरि जाय।
सुरत समानी सबद में, ताहि काल नहिँ खाय ॥२७॥
जा की पूँजी स्वास है, छिन आवै छिन जाय।
ता को ऐसा चाहिये, रहै नाम लौ लाय ॥२८॥
कहता हूँ कहि जात हूँ, कहौँ बजाये ढोल।
स्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल ॥२९॥

ऐसे महँगे मोल का, एक स्वास जो जाय।
चौदह लोक न पटतरे, काहे धूर मिलाय ॥३०॥
कबीर छुधा है कूकरी, करत भजन में भंग।
या को टुकड़ा डारि करि, सुमिरन करो निसंक ॥३१॥
चिंता तो सतनाम की, और न चितवै दास।
जो कछु चितवै नाम बिनु, सोई काल की फाँस ॥३२॥
सत्तनाम को सुमिरते, उधरे पतित अनेक।
कह कबीर नहिँ छाड़िये, सत्तनाम की टेक ॥३३॥
नाम जपत कन्या भली, साकट भला न पूत।
छेरी के गल गलथना, जा में दूध न मूत ॥३४॥
नाम जपत दरिद्री भला, टूटी घर की छानि।
कंचन मंदिर जारि दे, जहँ गुरु भक्ति न जान ॥३५॥
पाँच सखी पिउ पिउ करैँ, छठा जो सुमिरै मन।
आई सुरत कबीर की, पाया नाम रतन ॥३६॥
तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझ में रही न हूँ।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूँ तित तूँ ॥३७॥
सुमिरन मारग सहज का, सतगुरु दिया बताय।
स्वास उस्वास जो सुमिरता, इक दिन मिलसी आय ॥३८॥
माला स्वास उस्वास की, फेरै कोइ निज दास।
चौरासी भरमै नहीँ, कटै करम की फाँस ॥३९॥
ज्ञान कथै बकि बकि मरै, कोई करै उपाय।
सतगुरु हम से योँ कह्यो, सुमिरन करो समाय ॥४०॥
कबीर सुमिरन सार है, और सकल जंजाल।
आदि अंत मधि सोधिया, दूजा देखा ख्याल ॥४१॥
निज सुख सुमिरन नाम है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा वाचा कर्मना, कबीर सुमिरन सार ॥४२॥

थोड़ा सुमिरन बहुत सुख, जो करि जाने कोय।
सूत न लगै बिनावनी, सहजै अति सुख होय ॥४३॥
साईं यों मत जानियो, प्रीति घटै मम चित्त।
मरूँ तो तुम सुमिरत मरूँ, जीवत सुमिरूँ नित्त ॥४४॥
जप तप संजम साधना, सब सुमिरन के माहिँ।
कबीर जानै भक्त जन, सुमिरन सम कछु नाहिँ ॥४५॥
सहकामी सुमिरन करै, पावै उत्तम धाम।
निःकामी सुमिरन करै, पावै अविचल नाम ॥४६॥
हम तुम्हरो सुमिरन करैं, तुम मोहिं चितवत नाहि।
सुमिरन मन की प्रीति है, सो मन तुमहीं माहिं ॥४७॥
कबिरा हरि हरि सुमिरि ले, प्रान जाहिंगे छूटि।
घर के प्यारे आदमी, चलते लेंगे लूट ॥४८॥
कबीर निर्भय नाम जपु, जब लगि दीवा बाति।
तेल घटे बाती बुझै, तब सोवो दिन राति ॥४९॥
जैसा माया मन रमै, तैसे नाम रमाय।
तारा मंडल छाड़ि कै, जहाँ नाम तहँ जाय ॥५०॥
कबीर चित चंचल भया, चहुँ दिसि लागी लाय[1]।
गुरु सुमिरन हाथे घड़ा, लीजै बेगि बुझाय ॥५१॥
कबीर मुख सोई भला, जा मुख निकसै नाम।
जा मुख नाम न नीकसै, सो मुख कैने काम ॥५२॥
सत्त नाम को सुमिरना, हँस करि भावै खीज[2]।
उलटा सुलटा नीपजै, खेत पड़ा ज्यों बीज ॥५३॥
स्वास सुफल सो जानिये, जो सुमिरन में जाय।
और स्वास योंही गये, करि करि बहुत उपाय ॥५४॥

---

(१) आग। (२) चाहे हँसते हुए चाहे खिजलाहट के साथ।

कहा भरोसा देह का, बिनसि जाय छिन माहिं।
स्वास स्वास सुमिरन करो, और जतन कछु नाहिं ॥५५॥
जिवना थोरा ही भला, जो सत सुमिरन होय।
लाख बरस का जीवना, लेखे धरै न कोय ॥५६॥
बिना साच सुमिरन नहीं, बिन भेदी भक्ति न सोय।
पारस में परदा रहा, कस लोहा कंचन होय ॥५७॥
कंचन केवल गुरु भजन, दूजा काँच कथीर।
झूठा जाल जँजाल तजि, पकड़ो साच कबीर ॥५८॥
हृदय सुमिरनी नाम की, मेरा मन मसगूल[1]।
छबि लागे निरखत रहौं, मिटि गया संसय सूल ॥५९॥
सुमिरन का हल जोतिये, बीजा नाम जमाय।
खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, तहू न निस्फल जाय ॥६०॥
देखा देखी सब कहै, भोर भये हरि नाम।
अर्ध रात कोइ जन कहै, खानाजाद गुलाम ॥६१॥
नाम रटत इस्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन।
सुरत सबद एकै भया, जलही ह्वैगा मीन ॥६२॥
कबीर धारा अगम की, सतगुरु दई लखाय।
उलटि ताहि सुमिरन करो, स्वामी संग मिलाय ॥६३॥

शब्द का अंग

कबीर सबद सरीर में, बिन गुन[2] बाजै ताँत।
बाहर भीतर रमि रहा, ता तें छूटी भ्रांति ॥१॥
जो जन खोजी सबद का, धन्य संत है सोय।
कह कबीर सबदै गहे, कबहुँ न जाय बिगोय ॥ २ ॥

(१) लगा हुआ। (२) रस्सी।

सबद सबद बहु अंतरा, सबद सार का सीर।
सबद सबद का खोजना, सबद सबद का पीर ॥ ३ ॥
सबद सबद बहु अंतरा, सार सबद चित देय।
जा सबदै साहिब मिलै, सोई सबद गहि लेय ॥ ४ ॥
सबद सबद सब कोइ कहै, वो तो सबद बिदेह।
जिभ्या पर आवै नहीं, निरखि परखि करि देह ॥ ५ ॥
एक सबद सुखरास है, एक सबद दुखरास।
एक सबद बंधन कटै, एक सबद गल फाँस ॥ ६ ॥
सबद सबद सब कोइ कहै, सबद के हाथ न पाँव।
एक सबद औषधि करै, एक सबद करै घाव ॥ ७ ॥
सीखै सुनै बिचारि लै, ताहि सबद सुख देय।
बिना समझ सबदै गहै, कछु न लाहा लेय ॥ ८ ॥
सबद हमारा आदि का, पल पल करिये याद।
अंत फलैगी माहिँ की, बाहर की सब बाद ॥ ९ ॥
सबदहि मारे मरि गये, सबदहि तजिया राज।
जिन जिन सबद पिछानिया, सरिया तिन का काज ॥१०॥
सबद गुरू को कीजिये, बहुतक गुरू लबार।
अपने अपने लोभ को, ठौर ठौर बटमार ॥११॥
सबद हमारा हम सबद के, सबदहि लेय परक्ख।
जो तूँ चाहै मुक्ति को, अब मत जाय सरक्क ॥१२॥
सबद हमारा हम सबद के, सबद ब्रह्म का कूप।
जो चाहै दीदार को, परख सबद का रूप ॥१३॥
एक सबद गुरुदेव का, जा का अनंत विचार।
पंडित थाके मुनि जना, बेद न पावै पार ॥१४॥
सबद बिना सुति आँधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावै सबद का, फिरि फिरि भटका खाय ॥१५॥

यही बड़ाई सबद की, जैसे चुम्बक भाय।
बिना सबद नहिँ ऊबरै, केता करै उपाय ॥१६॥
सही टेक है तासु की, जा के सतगुरु टेक।
टेक निबाहै देँह भरि, रहै सबद मिलि एक ॥१७॥
काल फिरै सिर ऊपरे, जीवहिँ नजरि न आइ।
कह कबीर गुरु सबद गहि, जम से जीव बचाइ ॥१८॥
ऐसा मारा सबद का, मुआ न दीसै कोय।
कह कबीर सो ऊबरै, धड़ पर सीस न होय ॥१९॥
सबद बराबर धन नहीं, जा काइ जानै बाल।
हीरा तो दामों मिलै, सबदहिँ मोल न तोल ॥२०॥
सबद दुगाया ना दुरै, कहौं जो ढोल बजाय।
जो जन होवै जौहरी, लेहै सीस चढ़ाय ॥२१॥
सबद पाय सुति राखही, सो पहुँचै दरबार।
कह कबीर तहँ देखई, बैठे पुरुष हमार ॥२२॥
औरै दारू सब करी, पै सुभाव की नाहिँ।
सो दारू सतगुरु करी, रहै सबद के माहिँ ॥२३॥
सब्द उपदेस जो मैं कहूँ, जो कोइ मानै संत।
कहै कबीर बिचारि के, ताहि मिलाओँ कंत ॥२४॥
मता हमारा मंत्र है हम सा होय सो लेय।
सबद हमारा कल्प-तरु, जो चाहै सो देय ॥२५॥
रैन समानी भानु में, भानु अकासे माहिँ।
अकास समाना सबद में, सबद परे कछु नाहिँ ॥२६॥
सबद कहाँ से उठत है कहँ को जाइ समाय।
हाथ पाँव वा के नहीं, कैसे पकरा जाय ॥२७॥
सहस कँवल तेँ उठत है, सुन्न हिँ जाय समाय।
हाथ पाँव वा के नहीं, सुति तेँ पकरा जाय ॥२८॥

सबद कहाँ तेँ आइया, कहाँ सबद का भाव।
कहाँ सबद का सीस है, कहाँ सबद का पाँव ॥२९॥
सबद ब्रह्मँड तेँ आइया, मध्य सबद का भाव।
ज्ञान सबद का सीस है, अज्ञान सबद का पाँव ॥३०॥
सीतल सबद उचारिये, अहं आनिये नाहिँ।
तेरा प्रीतम तुज्झ में, सत्रू भी तुज्झ माहिँ ॥३१॥
सबद भेद तब जानिये, रहै सबद के माहिँ।
सबदै सबद प्रगट भया, दूजा दीखै नाहिँ ॥३२॥
सोई सबद निज सार है, जो गुरु दिया बताय।
बलिहारी वा गुरू की, सिष्य बिगोय[1] न जाय ॥३३॥
वह मोती मत जानियो, पुहै पोत के साथ।
यह तो मोती सबद का, बेधि रहा सब गात ॥३४॥
बलिहारी वहि दूध की, जा में निकसत घीव।
आधी साखि कबीर की, चार बेद को जीव ॥३५॥
सबद अहै गाहक नहीं, बस्तु सो गरुआ मोल।
बिना दाम को मानवा, फिरता डाँवाँडोल ॥३६॥
रैनि तिमिर नासत भयो, जबही भानु उगाय।
सार सबद के जानते, कर्म भर्म मिटि जाय ॥३७॥
जंत्र मंत्र सब झूठ है, मत भरमो जग कोय।
सार सबद जाने बिना, कागा हंस न होय ॥३८॥
सत्त सबद निज जानि कै, जिन कीन्हा परतीति।
काग कुमति तजि हंस ह्वै, चले सो भव जल जीति ॥३९॥
सबद साजि मन बस करै, सहज जोग है येहि।
सत्त सबद निज सार है, यह तो झूठी देहि ॥४०॥

---

(१) भरम या धोखे में न पड़ जाय।

सार सबद जाने बिना, जिव परलै में जाय।
काया माया थिर नहीं, सबद लेहु अरथाय ॥४१॥
कर्म फंद जग फंदिया, जप तप पूजा ध्यान।
जेहि सबद तें मुक्ति है, सो न परै पहिचान ॥४२॥
सतजुग त्रेता द्वापरा, यहि कलिजुग अनुमान।
सार सबद इक साच है, और झूठ सब ज्ञान ॥४३॥
पृथ्वी अप[१] हूँ तेज नहिँ, नहीं वायु आकास।
अललपच्छ तहँ ह्वै रहै, सत्त सबद परकास ॥४४॥

॥ सोरठा ॥

सतगुरु सबद प्रमान, अनहद बानी ऊचरै।
और झूठ सब ज्ञान, कहै कबीर बिचारि कै ॥४५॥
ज्ञानी सुनहु सँदेस, सबद बिबेकी पेखिया।
कह्यो मुक्तिपुर देस, तीनि लोक के बाहिरे ॥४६॥
मन तहँ गगन समाय, धुनि सुनि सुनि कै मग्न ह्वै।
नहिँ आवै नहिँ जाय, सुन्न सबद थिति पावही ॥४७॥
ज्ञानी करहु बिचार, सतगुरु ही से पाइये।
सत्त सबद निज सार, और सबै बिस्तार है ॥४८॥
जग में बहु परिपंच, ता में जीव भुलान सब।
नहिँ पावै कोइ संच, सार सबद जाने बिना ॥४९॥
गहै सबद निज मूल, सिंधहिँ बुंद समान है।
सूच्छम में अस्थूल, बीज बृच्छ बिस्तार ज्यों ॥५०॥

॥ साखी ॥

जाप मरै अजपा मरै, अनहद हूँ मरि जाय।
सुरत समानी सबद में, ता को काल न खाय ॥५१॥

(१) जल।

विनती का अंग

बिनवत हौं कर जोरि कै, सुनिये कृपा-निधान।
साध सँगति सुख दीजिये, दया गरीबी दान ॥ १ ॥
जो अब के सतगुरु मिलैं, सब दुख आखौं[1] रोय।
चरनों ऊपर सीस धरि, कहौं जो कहना होय ॥ २ ॥
मेरे सतगुरु मिलैंगे, पूछैंगे कुसलात।
आदि अंत की सब कहौं, उर अंतर की बात ॥ ३ ॥
सुरति करौ मेरे साइयाँ, हम हैं भवजल माहिं।
आपे ही बहि जायँगे, जो नहिं पकरौ बाहिं ॥ ४ ॥
क्या मुख लै बिनती करौं, लाज आवत है मोहिं।
तुम देखत औगुन करौं, कैसे भावौं तोहिं ॥ ५ ॥
सतगुरु तोहि बिसारि कै, का के सरनै जायँ।
सिव बिरंचि मुनि नारदा, हिरदे नाहि समायँ ॥ ६ ॥
मैं अपराधी जनम का, नख सिख भरा बिकार।
तुम दाता दुख-भंजना, मेरी करो सम्हार ॥ ७ ॥
अवगुन मेरे बाप जी, बकस गरीब-निवाज।
जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिता को लाज ॥ ८ ॥
औगुन किये तो बहु किये, करत न मानी हार।
भावे बंदा बकसिये, भावे गरदन मार ॥ ९ ॥
जो मैं भूल बिगाड़िया, ना करु मैला चित्त।
साहिब गरुआ लोड़िये, नफर बिगाड़ै नित्त ॥१०॥
साईं केरा बहुत गुन, औगुन कोई नाहिं।
जो दिल खोजौं आपना, सब औगुन मुझ माहिं ॥११॥

---

(१) कहूँ।

साहिब तुम जनि बीसरो, लाख लोग लगि जाहिं।
हम से तुमरे बहुत हैं, तुम सम हमरे नाहिं ॥१२॥
औसर बीता अल्प तन, पीव रहा परदेस।
कलँक उतारो साइयाँ, भानो भरम अँदेस ॥१३॥
कर जोरे बिनती करौं, भवसागर आपार।
बंदा ऊपर मिहर करि, आवागवन निवार ॥१४॥
अंतरजामी एक तुम, आतम के आधार।
जो तुम छोड़ो हाथ तें, कौन उतारै पार ॥१५॥
भवसागर भारी महा, गहिरा अगम अगाह[1]।
तुम दयाल दाया करो, तब पाओं कछु थाह ॥१६॥
साहिब तुमहिं दयाल हो, तुम लगि मेरी दौर।
जैसे काग जहाज को, सूझै और न ठौर ॥१७॥
साईं तेरा कछु नहीं, मेरा होय अकाज।
बिरद[2] तुम्हारे नाम को, सरन परे की लाज ॥१८॥
मेरा मन जो तोहिं से, यों जो तेरा होय।
अहरन ताता लोह ज्यों, संधि लखै नहिं कोय[3] ॥१९॥
मेरा मन जो तोहिं से, तेरा मन कहिं और।
कह कबीर कैसे निभै, एक चित्त दुइ ठौर ॥२०॥
मुझ में औगुन तुज्झ गुन, तुझ गुन औगुन मुज्झ।
जो मैं बिसरौं तुज्झ को, तू मत बिसरै मुज्झ ॥२१॥
मन परतीत न प्रेम रस, ना कछु तन में ढंग।
ना जानौं उस पीव से, क्योंकर रहसी रंग ॥२२॥
जिन को साईं रँगि दिया, कबहुँ न होहिं कुरंग।
दिन दिन बानी आगरी[4], चढ़ै सवाया रंग ॥२३॥

---

(१) अथाह। (२) महिमा। (३) जब दोनों टुकड़े लोहे के गरम हों तब बेमालूम जोड़ लग सकता है। (४) उम्र।

मेरा मुझ में कछु नहीं, जो कछु है सो तुज्झ ।
तेरा तुझ को सौंपते, का लागत है मुज्झ ॥२४॥

औगुनहारा गुन नहीं, मन का बड़ा कठोर ।
ऐसे समरथ सतगुरू, ताहि लगावैं ठौर ॥२५॥

तुम तो समरथ साइयाँ, दृढ़ कर पकरो बाहिँ ।
धुरही लै पहुँचाइयो, जनि छाड़ो मग माहिँ ॥२६॥

कबीर करत है बीनती, सुनो संत चित लाय ।
मारग सिरजनहार का, दीजै मोहिँ बताय ॥२८॥

सतगुरु बड़े दयाल हैं, संतन के आधार ।
भवसागरहि अथाह से, खेइ उतारैं पार ॥२८॥

भक्ति दान मोहिँ दीजिये, गुरु देवन के देव ।
और नहीं कछु चाहिये, निसु दिन तेरी सेव ॥२९॥

उपदेश का अंग

जो तो को काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल ।
तोहि फूल को फूल है, वा को है तिरसूल ॥ १ ॥

दुर्बल को न सताइये, जा की मोटी हाय ।
बिना जीव की स्वास से[१], लोह भसम ह्वै जाय ॥ २ ॥

कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय ।
आप ठगा सुख होत है, और ठगे दुख होय ॥ ३ ॥

या दुनिया में आइ के, छाड़ि देइ तू ऐंठ ।
लेना होइ सो लेइ ले, उठी जात है पैंठ ॥ ४ ॥

खाय पकाय लुटाइ ले, हे मनुवाँ मिहमान ।
लेना होय सो लेइ ले, यही गोय[२] मैदान ॥ ५ ॥

---

(१) भाथी या धौंकनी जो बिना जीव की होती है इसकी हवा से लोहा गल जाता है। (२) गेंद।

बहते को बहि जान दे, मत पकड़ावै ठौर।
समझाया समझै नहीं, दे दुइ धक्के और ॥३०॥
बहते को मत बहन दे, कर गहि ऐंचहु ठौर।
कहा सुना मानै नहीं, बचन कहो दुइ और ॥३१॥
बन्दे तू कर बन्दगी, तो पावै दीदार।
औसर मानुष जन्म का, बहुरि न बारम्बार ॥३२॥
मन राजा नायक भया, टाँडा लादा जाय।
हैहै हैहै ह्वै रही, पूँजी गई बिलाय ॥३३॥
जीवत कोइ समझै नहीं, मुआ न कहै सँदेस।
तन मन से परिचय नहीं, ता को क्या उपदेस ॥३४॥
जेहि जेवरि तें जग बँधा, तूँ जनि बँधै कबीर।
जासी आटा लोन ज्यों, सोन समान सरीर ॥३५॥
जिन गुरु जैसा जानिया, तिन को तैसा लाभ।
ओसे प्यास न भागसी, जब लगि धसै न आब[1] ॥३६॥
जिभ्या को दे बंधने, बहु बोलना निवारि।
सो पारख से संग करु, गुरुमुख सबद बिचारि ॥३७॥
जा की जिभ्या बंद नहिं, हिरदे नाहीं साच।
ता के संग ना लागिये, घालै बटिया काच[2] ॥३८॥
सकल दुरमती दूर करि, आछो जनम बनाव।
काग गमन गति छाड़ि दे, हंस गमन गति आव ॥३९॥
कर बंदगी बिबेक की, भेष धरे सब कोय।
कर बँदगी बहि जान दे, जहँ सबद बिबेक न होय ॥४०॥
साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहिँ बिचार।
पराई आतमा, जीभ बाँधि तरवार ॥४१॥

(१) पानी। (२) कच्चे रास्ते मे यानी कुराह मे गिरा देगा।

मधुर बचन है औषधी, कटुक बचन है तीर।
स्रवन द्वार ह्वै संचरै, सालै सकल सरीर ॥४२॥
बोलत ही पहिचानिये, साहु चोर को घाट।
अंतर की करनी सबै, निकसै मुख की बाट ॥४३॥
जिन ढूँढ़ा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठि।
जो बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठि ॥४४॥
ज्ञान रतन की कोठरी, चुप करि दीजे ताल[1]।
पारख आगे खोलिये, कुंजी बचन रसाल ॥४५॥
साध संत तेई जना, जिन माना बचन हमार।
आदि अंत उत्पति प्रलय, देखहु दृष्टि पसार ॥४६॥
पानी प्यावत क्या फिरै, घर घर सायर बारि।
जो जन तिरषावंत है, पीवैंगा झख मारि ॥४७॥
जो तू चाहै मुज्झ को, छाड़ि सकल की आस।
मुझ ही ऐसा ह्वै रहै, सब सुख तेरे पास ॥४८॥
चतुराई क्या कीजिये, जो नहिँ सबद समाय।
कोटिक गुन सूवा पढ़ै, अंत बिलाई खाय ॥४९॥
अलमस्त फिरे क़्या होत है, सुरत लीजिये धोय।
चतुराइ नहिँ छूटसी, सुरत सबद में पोय ॥५०॥
पढ़ना गुनना चातुरी, यह तो बात सहल।
काम दहन मन बसि करन, गगन चढ़न मुस्कल ॥५१॥
पढ़ि पढ़ि के पत्थर भये, लिखि लिखि भये जो ईंट।
कबीर अंतर प्रेम की, लागी नेक न छींट ॥५२॥
नाम भजो मन बसि करो, यही बात है तंत।
काहे को पढ़ि पचि मरो, कोटिन ज्ञान गिरंथ ॥५३॥

---

(१) ताला।

हम तो लखा तिहुँ लोक में, तुम क्यों कहो अलेख।
सार सबद जाना नहीं, धोखे पहिरा भेख॥ ६॥
राम कृस्न अवतार हैं, इन की नाहीं माँड।
जिन साहिब स्रिष्टी किया, (सो) किनहुँ न जाया राँड॥ ७॥
संपुट माहिँ समाइया, सो साहिब नहिँ होय।
सकल माँड में रमि रहा, मेरा साहिब सोय॥ ८॥
साहिब मेरा एक है, दूजा कहा न जाय।
दूजा साहिब जो कहूँ, साहिब खरा रिसाय॥ ९॥
जा के मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप अरूप।
पुहुप बास तें पातरा, ऐसा तत्त्व अनूप॥१०॥
देंही माहिँ बिदेह है, साहिब सुरत सरूप।
अनँत लोक में रमि रहा, जा के रंग न रूप॥११॥
बूझो करता आपना, मानो बचन हमार।
पाँच तत्त्व के भीतरे, जा का यह संसार॥१२॥
चार भुजा के भजन में, भूलि परे सब संत।
कबीर सुमिरै तासु को, जाके भुजा अनत॥१३॥
निबल सबल जो जानि के, नाम धरा जगदीस।
कहै कबीर जनमै मरै, ताहि धरूँ नहिँ सीस॥१४॥
जनम मरन से रहित है, मेरा साहिब सोय।
बलिहारी वहि पीव की, जिन सिरजा सब कोय॥१५॥
समुँद पाटि लंका गयो, सीता को भरतार।
ताहि अगस्त अचै[1] गयो, इन में को करतार॥१६॥
गिरवर धार्‌यो कृस्न जी, द्रोनागिरि हनुमंत।
सेस नाग सब सृष्टि सहारी, इन में को भगवंत॥१७॥

---

(१) कथा है कि अगस्त मुनि ने समुद्र का पानी सब पी लिया था।

राम कृस्न को जिन किया, सो तो करता न्यार ।
अंधा ज्ञान न बूझई, कहै कबीर बिचार ॥१८॥

— —

घट मठ (सर्व घट व्यापी) का अंग

कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढ़ै बन माहिँ ।
ऐसे घट में पीव है, दुनियाँ जानै नाहिँ ॥ १ ॥
तेरा साईं तुज्झ में, ज्योँ पुहुपन में बास ।
कस्तूरी का मिरग ज्योँ, फिरि फिरि ढूँढ़ै घास ॥ २ ॥
जा कारन जग ढूँढ़िया, सो तो घटही माहिँ ।
परदा दीया भरम का, ता तेँ सूझै नाहिँ ॥ ३ ॥
समझै तो घर मेँ रहै, परदा पलक लगाय ।
तेरा साहिब तुज्झ मेँ, अंत कहूँ मत जाय ॥ ४ ॥
सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोय ।
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परघट होय ॥ ५ ॥
जेता घट तेता मता, बहु बानी बहु भेख ।
सब घट व्यापक ह्वै रहा, सोई आप अलेख ॥ ६ ॥
भूला भूला क्या फिरै, सिर पर बँध गइ बेल ।
तेरा साईं तुज्झ में, ज्यों तिल माहीं तेल ॥ ७ ॥
ज्योँ तिल माहीं तेल है, ज्योँ चकमक में आगि ।
तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै तो जागि ॥ ८ ॥
ज्योँ नैनन में पूतरी, योँ खालिक घट माहिं ।
मूरख लोग न जानहीं, बाहर ढूँढ़न जाहिं ॥ ९ ॥
पुहुप मध्य ज्योँ बास है, व्यापि रहा सब माहिं ।
संतोँ माहीं पाइये, और कहूँ कछु नाहिं ॥१०॥
पावक रूपी साइयाँ, सब घट रहा समाय ।
चित चकमक लागै नहीं, ता तेँ बुझि बुझि जाय ॥११॥

समदृष्टी का अंग

समदृष्टी सतगुरु किया, भर्म किया सब दूर।
भया उँजारा ज्ञान का, ऊगा निर्मल सूर ॥ १

समदृष्टी सतगुरु किया, दीया अविचल ज्ञान।
जहँ देखौं तहँ एकही, दूजा नाहीं आन ॥ २

समदृष्टी सतगुरु किया, मेटा भरम बिकार।
जहँ देखौं तहँ एकही, साहिब का दीदार ॥ ३

समदृष्टी तब जानिये, सीतल समता होय।
सब जीवन की आतमा, लखै एक सी सोय ॥ ४

भेदी का अंग

कबीर भेदी भक्त से, मेरा मन पतियाय।
सेरी पावै सबद की, निर्भय आवै जाय ॥ १

भेदी जानै सबै गुन, अनभेदी क्या जान।
कै जानै गुरु पारखी, कै जा के लागा बान ॥ २

भेद ज्ञान साबुन भया, सुमिरन निर्मल नीर।
अंतर धोई आतमा, धोया निर्गुन चीर ॥ ३

भेद ज्ञान तो लौं भला, जौ लौं मेल न होय।
परम जोति प्रगटै जहाँ, तहं बिकल्प नहिं कोय ॥ ४

परिचय का अंग

पिउ परिचय तब जानिये, पिउ से हिलमिल होय।
पिउ की लाली मुख पड़ै, परगट दीसै सोय ॥ १ ।

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गइ लाल ॥ २ ।

जिन पावन भुइँ बहु फिरे, घूमे देस बिदेस।
पिया मिलन जब होइया, आँगन भया बिदेस ॥ ३ ॥
उलटि समाना आप में, प्रगटी जोति अनंत।
साहिब सेवक एक सँग, खेलैं सदा बसंत ॥ ४ ॥
जोगी हुआ झलक लगी, मिटि गया ऐंचा तान।
उलटि समाना आप में, हूआ ब्रह्म समान ॥ ५ ॥
हम बासी वा देस के, जहँ सत्त पुरुष की आन।
दुख सुख कोइ ब्यापै नहीं, सब दिन एक समान ॥ ६ ॥
हम बासी वा देस के, जहँ बारह मास बिलास।
प्रेम झिरै बिगसै कँवल, तेज पुंज परकास ॥ ७ ॥
संसय करौं न मैं डरौं, सब दुख दिये निवार।
सहज सुन्न में घर किया, पाया नाम अधार ॥ ८ ॥
बिन पाँवन का पंथ है, बिन बस्ती का देस।
बिना देंह का पुरुष है, कहै कबीर सँदेस ॥ ९ ॥
नोन गला पानी मिला, बहुरि न भरिहै गौन।
सुरत सबद मेला भया, काल रहा गहि मौन ॥१०॥
हिलि मिलि खेलौं सबद से, अंतर रही न रेख।
समझे का मति एक है, क्या पंडित क्या सेख ॥११॥
अलख लखा लालच लगा, कहत न आवै बैन।
निज मन धसा स्वरूप में, सतगुरु दीन्ही सैन ॥१२॥
कहना था सो कहि दिया, अब कछु कहा न जाय।
एक रहा दूजा गया, दरिया लहर समाय ॥१३॥
पिंजर प्रेम प्रकासिया, जागी जोति अनंत।
संसय छूटा भय मिटा, मिला पियारा कंत ॥१४॥
उनमुनि लागी सुन्न में, निसु दिन रहि गलतान।
तन मन की कछु सुधि नहीं, पाया पद निरबान ॥१५॥

उनमुनि चढ़ी अकास को, गई धरनि से छूटि ।
हंस चला घर आपने, काल रहा सिर कूटि ॥१६॥
उनमुनि से मन लागिया, गगनहिँ पहुँचा जाय ।
चाँद बिहूना चाँदना, अलख निरंजनराय ॥१७॥
मेरी मिटि मुक्ता भया, पाया अगम निवास ।
अब मेरे दूजा नहीं, एक तुम्हारी आस ॥१८॥
सुरति समानी निरति मेँ, अजपा माहीँ जाप ।
लेख समाना अलेख में, आपा माहीँ आप ॥१६॥
सुरति समानी निरति में, निरति रही निरधार ।
सुरति निरति परिचय भया, तब खुला सिंधु दुवार ॥२०॥
गुरू मिले सीतल भया, मिटी मोह तन ताप ।
निसु बासर सुख-निधि लहौं, अन्तर प्रगटे आप ॥२१॥
कौतुक देखा देंह बिनु, रबि ससि बिना उजास ।
साहिब सेवा माहिँ है, बेपरवाही दास ॥२२॥
पवन नहीं पानी नहीं, नहीँ धरनि आकास ।
तहाँ कबीरा संत जन, साहिब पास खवास ॥२३॥
अगवानी तो आइया, ज्ञान बिचार बिबेक ।
पीछे गुरु भी आयँगे, सारे साज समेत ॥२४॥
पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान ।
कहिबे की सोभा नहीँ, देखे ही परमान ॥२५॥
सूरज समाना चाँद में, दोऊ किया घर एक ।
मन का चेता तब भया, पूर्ब जनम का लेख ॥२६॥
पिंजर प्रेम प्रकासिया, अन्तर भया उजास ।
सुख करि सूती महल में, बानी फूटी बास ॥२७॥
आया था संसार में, देखन को बहु रूप ।
कहै कबीरा संत हो, परि गया नजरि अनूप ॥२८॥

पाया था सो गहि रहा, रसना लागी स्वाद ।
रतन निराला पाइया, जगत टटोला बाद ॥२९॥
कबीर देखा एक अँग, महिमा कही न जाय ।
तेज पुंज परसा धनी, नैनों रहा समाय ॥३०॥
नेँव बिहूना देहरा, देँह बिहूना देव ।
तहाँ कबीर बिलंबिया, करै अलख की सेव ॥३१॥
कबीर कमल प्रकासिया, ऊगा निर्मल सूर ।
रैन अँधेरी मिटि गई, बाजे अनहद तूर ॥३२॥
आकासे औंधा कुआँ, पाताले पनिहार ।
जल हंसा कोइ पीवई, बिरला आदि बिचार ॥३३॥
गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गँभीर ।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी, भींजै दास कबीर ॥३४॥
गगन मँडल के बीच में, जहाँ सोहंगम डोरि ।
सबद अनाहद होत है, सुरति लगी तहँ मोरि ॥३५॥
दीपक जोया ज्ञान का, देखा अपरं देव ।
चार बेद की गम नहीं, जहाँ कबीरा सेव ॥३६॥
कबीर जब हम गावते, तब जाना गुरु नाहिँ ।
अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाहिँ ॥३७॥
मानसरोवर सुगम जल, हंसा केलि कराय ।
मुकताहल मोती चुगै, अब उड़ि अंत न जाय ॥३८॥
सुन्न मँडल में घर किया, बाजै सबद रसाल ।
रोम रोम दीपक भया, प्रगटे दीनदयाल ॥३९॥
पूरे से परिचय भया, दुख सुख मेला दूरि ।
जम से बाकी कटि गई, साईं मिला हजूर ॥४०॥
सुरति उड़ानी गगन को, चरन बिलंबी जाय ।
सुख पाया साहिब मिला, आनँद उर न समाय ॥४१॥

जा बन सिंह न संचरै, पंछी उड़ि नहिँ जायँ।
रैन दिवस की गम नहीं, (तहँ) रहा कबीर समाय ॥४२॥

कबीर तेज अनंत का, मानो सूरज सैन।
पति सँग जागी सुन्दरी, कौतुक देखा नैन ॥४३॥

अगम अगोचर गम नहीं, जहाँ झिलमिलै जोत।
तहाँ कबीरा बंदगी, पाप पुन्य नहिँ छोत ॥४४॥

कबीर मन मधुकर भया, कीया नर तरु बास।
कँवल जो फूला नीर बिन, कोइ निरखै निज दास ॥४५॥

सीप नहीं सायर नहीं, स्वाँति बुंद भी नाहिँ।
कबीर मोती नीपजे, सुन्न सिखर घट माहिँ ॥४६॥

घट में औघट पाइया, औघट माहीं घाट।
कह कबीर परिचय भया, गुरू दिखाई बाट ॥४७॥

जहँ मोतियन की झालरी, हीरन का परकास।
चाँद सूर की गम नहीं, दरसन पावै दास ॥४८॥

कछु करनी कछु कर्म गति, कछु पूरबला लेख।
देखो भाग कबीर का, दोसत[1] किया अलेख ॥४९॥

पानी हीं तेँ हिम भया, हिम हीं गया बिलाय।
कबीर जो था सोइ भया, अब कछु कहा न जाय ॥५०॥

जा कारन मैं जाय था, सो तो मिलिया आय।
साइँ ते सन्मुख भया, लगा कबीरा पाँय ॥५१॥

पंछी उड़ाना गगन को, पिंड रहा परदेस।
पानी पीया चोंच बिन, भूल गया यह देस ॥५२॥

सुचि[2] पाया सुख ऊपजा, दिल दरिया भरपूर।
सकल पाप सहजे गया, साहिब मिला हजूर ॥५३॥

---

(१) मित्र। (२) पवित्रता।

तन भीतर मन मानिया, बाहर कतहुँ न लाग।
ज्वाला तेँ फिरि जल भया, बुझी जलन्ती आग ॥५४॥
तत पाया तन बीसरा, मन धाया धरि ध्यान।
तपन मिटी सीतल भया, सुन्न किया अस्नान ॥५५॥
कबीर दिल दरिया मिला, फल पाया समरत्थ।
सायर माहिँ ढँढोलता, हीरा चढ़ि गया हत्थ ॥५६॥
जा कारन मैं जाय था, सो तो पाया ठौर।
सोही फिर आपन भया, जा को कहता और ॥५७॥
कबीर देखा इक अगम, महिमा कही न जाय।
तेज पुंज परसा धनी, नैनोँ रहा समाय ॥५८॥
गरजै गगन अमी चुवै, कदली कमल प्रकास।
तहाँ कबीरा बन्दगी, करि कोई निज दास ॥५९॥
जा दिन किरतम ना हता, नहीं हाट नहिँ बाट।
हता कबीरा संत जन, देखा औघट घाट ॥६०॥
नहीं हाट नहिँ बाट था, नहिँ धरती नहिँ नीर।
असंख जुग परलय गया, तब की कहै कबीर ॥६१॥
पाँच तत्त गुन तीन के, आगे भक्ति मुकाम।
जहाँ कबीरा घर किया, तहँ दत्त[1] न गोरख राम ॥६२॥
सुर नर मुनि जन औलिया, यह सब उरली तीर।
अलह राम की गम नहीं, तहँ घर किया कबीर ॥६३॥
हम बासी उस देस के, जहाँ ब्रह्म का खेल।
दीपक देखा गैब का, बिन बाती बिन तेल ॥६४॥
हम बासी उस देस के, (जहँ) जाति बरन कुल नाहिँ।
सबद मिलावा ह्वै रहा, देह मिलावा नाहिँ ॥६५॥

---

(१) दत्तात्रेय।

जब दिल मिला दयाल से, तब कछु अंतर नाहिं ।
पाला गलि पानी मिला, यों हरिजन हरि माहिं ॥६६॥
कबीर कमल प्रकासिया, ब्रह्म बास तहँ होय ।
मन भँवरा जहँ लुबधिया, जानैगा जन कोय ॥६७॥
सून्न सरोवर मीन मन, नीर तीर सब देव ।
सुधा सिंधु सुख बिलसही, कोइ बिरला जाने भेव ॥६८॥
मैं लागा उस एक से, एक भया सब माहिं ।
सब मेरा मैं सबन का, तहाँ दूसरा नाहिं ॥६९॥
गुन इन्द्री सहजे गये, सतगुरु करी सहाय ।
घट में नाम प्रगट भया, बकि बकि मरै बलाय ॥७०॥

मौन का अंग

भारी कहूँ तो बहु डरूँ, हलुका कहूँ तो झीठ[1] ।
मैं क्या जानूँ पीव को, नैना कछू न दीठ ॥ १ ॥
दीठा है तो कस कहूँ, कहूँ तो को पतियाय ।
साईं जस तैसा रहो, हरखि हरखि गुन गाय ॥ २ ॥
ऐसो अद्‌भुत मत कथो, कथो तो धरो छिपाय ।
बेद कुराना ना लिखी, कहूँ तो को पतियाय ॥ ३ ॥
जो देखै सो कहै नहिं, कहै सो देखै नाहिं ।
सुनै सो समझावै नहीं, रसना द्दग सरवन काहिं ॥ ४ ॥
जो पकरै सो चलै नहिं, चलै सो पकरै नाहिं ।
कह कबीर यह साखि को, अरथ समझ मन माहिं ॥ ५ ॥
गगन दुवारे मन गया, करै अमी रस पान ।
रूप सदा झलकत रहै, गगन मँडल गलतान ॥ ६ ॥

---

(१) झूठ ।

जानि बूझि जड़ होइ रहै, बल तजि निर्बल होय।
कह कबीर वा दास को, गंजि सकै नहिँ कोय॥ ७॥
बाद बिबादे बिष घना, बोले बहुत उपाध।
मौनि गहै सब की सहै, सुमिरै नाम अगाध॥ ८॥

सजीवन का अंग

जरा मीच व्यापै नहीं, मुआ न सुनिये कोय।
चलु कबीर वा देस को, जहँ बैद साइयाँ होय॥ १॥
भवसागर तैँ यौँ रहो, ज्यौँ जल कँवल निराल।
मनुवा व्हाँ लौ राखिये, जहाँ नहीँ जम काल॥ २॥
कबीर जोगी बन बसा, खनि खाया कँदमूल।
ना जानौँ केहि जड़ी से, अमर भया अस्थूल॥ ३॥
कबीर तो पिउ पै चला, माया मोह से तोरि।
गगन मँडल आसन किया, काल रहा मुख मोरि॥ ४॥
कबीर मन तीखा किया, लाइ बिरह खरसान।
चित चरनों से चिपटिया, का करै काल का बान॥ ५॥

जीवत मृतक का अंग

जीवत मिरतक होइ रहै, तजै खलक की आस।
रच्छक समरथ सतगुरू, मत दुख पावै दास॥ १॥
कबीर काया समुँद है, अंत न पावै कोय।
मिरतक होइ के जो रहै, मानिक लावै सोय॥ २॥
मैं मरजीवा[1] समुँद का, डुबकी मारी एक।
मूठी लाया ज्ञान की, जा में बस्तु अनेक॥ ३॥

(१) समुद्र में डुबकी मार कर मोती निकालने वाला।

डुबकी मारी समुँद में, निकसा जाय अकास।
गगन मँडल में घर किया, हीरा पाया दास॥ ४॥
हरि हीरा क्यों पाइहै, जिन जीवे की आस।
गुरु दरिया से काढ़सी, कोइ मरजीवा दास॥ ५॥
सुन्न सहर में पाइया, जहँ मरजीवा मन।
कबिरा चुनि चुनि ले गया, अंतर नाम रतन॥ ६॥
मैं मरजीवा समुँद का, पैठा सप्त पताल।
लाज कानि कुल मेटि के, गहि ले निकसा लाल॥ ७॥
मोती निपजै सीप में, सीप समुंदर माहिं।
कोइ मरजीवा काढ़सी, जीवन की गम नाहिं॥ ८॥
गुरु दरिया सूभर[1] भरा, जा में मुक्ता लाल।
मरजीवा ले नीकसै, पहिरि छिमा की खाल॥ ९॥
खरी कसौटी नाम की, खोटा टिकै न कोय।
नाम कसौटी सो टिकै, जो जीवत मिरतक होय॥१०॥
ऊँचा तरवर[2] गगन फल, बिरला पंछी खाय।
इस फल को तो सो चखै, जो जीवत ही मरि जाय॥११॥
जब लग आस सरीर की, मिरतक हुआ न जाय।
काया माया मन तजै, चौड़े रहै बजाय॥१२॥
कबीर मन मिरतक भया, दुरबल भया सरीर।
पाछे लागे हरि फिरैं, कहैं कबीर कबीर॥१३॥
मन को मिरतक देखि के, मत मानै बिस्वास।
साध जहाँ लौं भय करैं, जब लग पिंजर स्वास॥१४॥
मैं जानौं मन मरि गया, मरि के हूआ भूत।
मूए पीछे उठि लगा, ऐसा मेरा पूत॥१५॥

---

(१) प्रकाशमान। (२) पेड़।

मरते मरते जग मुआ, औसर मुआ न कोय।
दास कबीरा यों मुआ, बहुरि न मरना होय ॥१६॥
बैद मुआ रोगी मुआ, मुआ सकल संसार।
एक कबीरा ना मुआ, जा के नाम अधार ॥१७॥
जीवन से मरना भला, जो मरि जानै कोय।
मरने पहिले जो मरै, (तो) अजर रु अम्मर होय ॥१८॥
मन की मनसा मिटि गई, अहं गई सब छूट।
गगन मँडल में घर किया, काल रहा सिर कूट ॥१९॥
मोहिं मरने का चाव है, मरौं तो गुरू दुवार।
मत गुरु बूझै बात री, कोइ दास मुआ दरबार ॥२०॥
जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनंद।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानंद ॥२१॥
भक्त मरे क्या रोइये, जो अपने घर जाय।
रोइये साकित बापुरे, जो हाटो हाट बिकाय ॥२२॥
मरना भला बिदेस का, जहँ अपना नहिं कोय।
जीव जंत भोजन करैं, सहज महोच्छव होय ॥२३॥
कबीर मरि मरघट गया, किनहुँ न बूझी सार।
हरि आगे आदर लिया, ज्यौं गऊ बछा की लार ॥२४॥
सूली ऊपर घर करै, बिष का करै अहार।
ता को काल कहा करै, जो आठ पहर हुसियार ॥२५॥
जिन पाँवन भुइँ बहु फिरा, देखा देस बिदेस।
तिन पाँवन थिति पकरिया, आँगन भया बिदेस ॥२६॥
पाँच पचीसो मारिया, पापी कहिये सोय।
यहि परमारथ बूझि के, पाप करो सब कोय ॥२७॥
आपा मेटे गुरु मिलै, गुरु मेटे सब जाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कहे न कोइ पतियाय ॥२८॥

घर जारे घर ऊबरै, घर राखे घर जाय।
एक अचंभा देखिया, मुआ काल को खाय ॥२६॥
कबीर चेरा संत का, दासनहू का दास।
अब तो ऐसा होइ रहु, ज्यों पाँव तले की घास ॥३०॥
रोड़ा होइ रहु बाट का, तजि आपा अभिमान।
लोभ मोह तृस्ना तजै, ताहि मिलै निज नाम ॥३१॥
रोड़ा भया तो क्या भया, पंथी को दुख देय।
साधू ऐसा चाहिये, ज्यों पैंड़े की खेह ॥३२॥
खेह भई तो क्या भया, उड़ि उड़ि लागे अंग।
साधू ऐसा चाहिये, जैसे नीर निपंग ॥३३॥
नीर भया तो क्या भया, ताता सीरा जोय।
साधू ऐसा चाहिये, जो हरि ही जैसा होय ॥३४॥
हरि भया तो क्या भया, जो करता हरता होय।
साधू ऐसा चाहिये, जो हरि भज निरमल होय ॥३५॥
निरमल भया तो क्या भया, निरमल माँगे ठौर।
मल निरमल तैं रहित है, ते साधू कोइ और ॥३६॥

साध का अंग

साध बड़े परमारथी, घन ज्यौं बरसैं आय।
तपन बुझावैं और की, अपनो पारस लाय ॥ १ ॥
सद कृपाल दुख परिहरन, बैर भाव नहिं दोय।
छिमा ज्ञान सत भाखही, हिंसा रहित जो होय ॥ २ ॥
दुख सुख एक समान है, हरष सोक नहिं व्याप।
उपकारी निःकामता, उपजै छोह न ताप ॥ ३ ॥
सदा रहै संतोष में, धरम आप दृढ़ धार।
आस एक गुरुदेव की, और न चित्त बिचार ॥ ४ ॥

सावधान औ सीलता, सदा प्रफुल्लित गात ।
निरबिकार गम्भीर मति, धीरज दया बसात ॥ ५ ॥
निरबैरी निःकामता, स्वामी सेती नेह ।
बिषया से न्यारा रहै, साधन का मति येह ॥ ६ ॥
मान अपमान न चित धरै, औरन को सनमान ।
जो कोई आसा करै, उपदेसै तेहि ज्ञान ॥ ७ ॥
सीलवंत दृढ़ ज्ञान मति, अति उदार चित होय ।
लज्यावान अति निछलता, कोमल हिरदा सोय ॥ ८ ॥
दयावंत धरमक ध्वजा, धीरजवान प्रमान ।
संतोषी सुखदायक रु, सेवक परम सुजान ॥ ९ ॥
ज्ञानी अभिमानी नहीं, सब काहू से हेत ।
सत्यवान परस्वारथी, आदर भाव सहेत ॥१०॥
निस्चय भल अरु दृढ़ मता, ये सब लच्छन जान ।
साध सोई है जगत में, जो यह लच्छनवान ॥११॥
ऐसा साधू खोजि कै, रहिये चरनौं लाग ।
मिटै जनम की कल्पना, जा के पूरन भाग ॥१२॥
सिंहौं के लेहँड़े नहीं, हंसौं की नहिं पाँत ।
लालौं की नहिं बोरियाँ, साध न चलैं जमात[1] ॥१३॥
सब बन तो चन्दन नहीं, सूरा का दल नाहिं ।
सब समुद्र मोती नहीं, यौं साधू जग माहिं ॥१४॥
स्वाँगी सब संसार है, साधू समझ अपार ।
अललपच्छ कोइ एक है, पंछी कोटि हजार ॥१५॥
सिंह साध का एक मति, जीवत ही को खाय ।
भाव-हीन मिरतक दसा, ता के निकट न जाय ॥१६॥

(१) गिरोह, भीड़-भाड़ ।

रबि को तेज घटै नहीं, जो घन जुड़ै घमंड।
साध बचन पलटै नहीं, (जो) पलटि जाय ब्रह्मंड ॥१७॥
साध कहावन कठिन है, ज्यों खाँड़े की धार।
डिगमिगाय तो गिरि पड़ै, निःचल उतरै पार ॥१८॥
साध कहावन कठिन है, ज्यों लम्बी पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेम रस, गिरै तो चकनाचूर ॥१९॥
जौन चाल संसार की, तौन साध की नाहिँ।
डिंभ चाल करनी करै, साध कहो मत ताहि ॥२०॥
गाँठी दाम न बाँधई, नहिँ नारी से नेह।
कह कबीर ता साध की, हम चरनन की खेह ॥२१॥
आवत साध न हरषिया, जात न दीया रोय।
कह कबीर वा दास की, मुक्ति कहाँ से होय ॥२२॥
छाजन भोजन प्रीति से, दीजे साध बुलाय।
जीवत जस है जक्त में, अंत परम पद पाय ॥२३॥
साध हमारी आतमा, हम साधन के जीव।
साधन मद्धे यों रहौं, ज्यों पय मद्धे घीव ॥२४॥
ज्यों पय मद्धे घीव है, त्यों रमिया सब ठौर।
बक्ता स्रोता बहु मिले, मथि काढ़ैं ते और ॥२५॥
साध नदी जल प्रेम रस, तहाँ प्रछालौ[1] अंग।
कह कबीर निरमल भया, साधू जन के संग ॥२६॥
बृच्छ कबहुँ नहिँ फल भखै, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने, साधन धरा सरीर ॥२७॥
साधू आवत देखि कर, हँसी हमारी देह।
माथे का ग्रह ऊतरा, नैनों बँधा सनेह ॥२८॥

---

(१) धोओ।

साधु साधु सबही बड़े, अपनी अपनी ठौर।
सबद बिबेकी पारखी, ते माथे के मौर ॥२६॥
साधु साधु सब एक हैं, जस पोस्ता का खेत।
कोई बिबेकी लाल है, कोई सेत का सेत ॥३०॥
निराकार की आरसी, साधोंहीं की देंहि।
लखा जो चाहै अलख को, (तो) इनहीं में लखि लेहि ॥३१॥
कोई आवै भाव लै, कोइ अभाव लै आव।
साध दोऊ को पोषते, भाव न गिनैं अभाव ॥३२॥
कबीर दरसन साध का, करत न कीजै कानि।
(ज्यों) उद्यम से लछमी मिलै, आलस में नित हानि ॥३३॥
कबीर दरसन साध का, साहिब आवैं याद।
लेखे में सोई घड़ी, बाकी के दिन बाद ॥३४॥
खाली साध न भेंटिये, सुन लीजे सब कोय।
कहैं कबीरा भेंट धरु, जो तेरे घर होय ॥३५॥
मन मेरा पंछी भया, उड़ि कर चढ़ा अकास।
गगन मँडल खाली पड़ा, साहिब संतोँ पास ॥३६॥
नहिँ सीतल है चन्द्रमा, हिम नहिँ सीतल होय।
कबीर सीतल संत जन, नाम सनेही सोय ॥३७॥
रक्त छाड़ि पय को गहै, ज्योँ रे गऊ का बच्छ।
औगुन छाड़ै गुन गहै, ऐसा साधू लच्छ ॥३८॥
साधू आवत देखि कै, मन में करै मरोर।
सो तो होसी चूहरा[1], बसै गाँव की छोर ॥३६॥
साधन के मैं संग हौं, अनत कहूँ नहिँ जावँ।
जो मोहिँ अरपै प्रीति से, साधन मुख है खावँ ॥४०॥

---

(१) भंगी।

साध सिद्ध बड़ अंतरा, जैसे आम बबूल।
वा की डारी अमी फल, या की डारी सूल ॥६४॥

साधू सोई जानिये, चलै साधु की चाल।
परमारथ राता रहै, बोलै बचन रसाल ॥६५॥

हरि दरिया सूभर भरा, साधौं का घट सीप।
ता मैं मोती नीपजै, चढ़ै देसावर दीप ॥६६॥

साधू ऐसा चाहिये, जा के ज्ञान बिबेक।
बाहर मिलते से मिलै, अंतर सब से एक ॥६७॥

अगम पंथ को मन गया, सुरत भई अगुवान।
तहाँ कबीरा मँड़ि रहा, बेहद के मैदान ॥६८॥

बहता पानी निर्मला, बँधा गँधीला होय।
साधू जन रमते भले, दाग न लागै कोय ॥६९॥

बँधा भी पानी निर्मला, जो टुक गहिरा होय।
साधू जन बैठा भला, जो कछु साधन सोय ॥७०॥

कौन साधु का खेल है, कौन सुरत का दाव।
कौन अमी का कूप है, कौन बज्र का घाव ॥७१॥

छिमा साधु का खेल है, सुमति सुरत का दाव।
सतगुरु अमृत कूप हैं, सबद बज्र का घाव ॥७२॥

साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिँ।
धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिँ ॥७३॥

कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाय।
अंक भरे भरि भेटिये, पाप सरीरा जाय ॥७४॥

भली भई जो भय मिटा, टूटी कुल की लाज।
बेपरवाही ह्वै रहा, बैठा नाम जहाज ॥७५॥

साधु समुंदर जानिये, माहीं रतन भराय।
मंद भाग मूठी भरै, कर कंकर चढ़ि जाय ॥७६॥

परमेसुर तें संत बड़, ता का कहा उनमान।
हरि माया आगे धरे, संत रहैं निर्बान ॥७७॥
संत मिला जनि बीछरो, बिछरौ यह मम प्रान।
नाम-सनेही ना मिलै, तो प्रान देहि मत आन ॥७८॥
कबीर कुल सोई भला, जा कुल उपजै दास।
जेहि कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक पलास ॥७६॥
चंदन की कुटकी[1] भली, नहिँ बबूल लखराँव।
साधन की झुपड़ी भली, ना साकट को गाँव ॥८०॥
हैवर गैबर[2] सुघर घर, छत्रपती की नारि।
तासु पटतरे ना तुलै, हरिजन की पनिहारि ॥८१॥
साधन की कुतिया भली, बुरी सकट की माय।
वह बैठी हिरि जस सुनै, वह निन्दा करने जाय ॥८२॥
हरि दरबारी साध हैं, इन सम और न होय।
बेगि मिलावैं नाम से, इन्हैं मिलै जो कोय ॥८३॥
साधन केरी दया से, उपजै बहुत अनंद।
कोटि बिघन पल में टरै, मिटै सकल दुख द्वंद ॥८४॥
धन्य सो माता सुन्दरी, जिन जाया साधू पूत।
नाम सुमिरि निर्भय भया, अरु सब गया अबूत[3] ॥८५॥
बेद थके ब्रह्मा थके, थाके सेस महेस।
गीताहू की गम नहीं, तहँ संत किया परवेस ॥८६॥
तीरथ जाये एक फल, साध मिले फल चारि[4]।
सतगुरु मिले अनेक फल, कहै कबीर बिचारि ॥८७॥
साधु सीप साहिब समुँद, निपजत[5] मोती माहिँ[6]।
बस्तु ठिकाने पाइये, नाल खाल[7] में नाहिँ ॥८८॥

(१) टुकड़ा। (२) अनगिनत घोड़े हाथी। (३) बृथा। (४) अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष। (५) पैदा होता है। (६) अंतर में। (७) नाला और गड्ढा।

साधू खोजा[1] राम के, धंसैं जो महलन माहिँ ।
औरन को परदा लगै, इन को परदा नाहिँ ॥८९॥

हरि सेती हरिजन बड़े, समझि देखु मन माहिँ ।
कह कबीर जग हरि बिखे[2], सो हरि हरिजन माहिँ ॥९०॥

साध बड़े संसार में, हरि तें अधिका सोय ।
बिन इच्छा पूरन करैं, साहिब हरि नहिँ दोय ॥९१॥

साधू आवत देखि के, चरनन लागूँ धाय ।
ना जानूँ यहि भेष में, हरि ही जो मिलि जाय ॥९२॥

कबीर दर्सन साधु के, बड़ भागे दर्साय ।
जो होवे सूली सजा[3], काँटई टरि जाय ॥९३॥

साध बृच्छ सत नाम फल, सीतल सब्द बिचार ।
जग में होते साध नहिँ, जरि मरता संसार ॥९४॥

साध सेव जा घर नहीं, सतगुरु पूजा नाहिँ ।
सो घर मरघट सारिखा[4], भूत बसै ता माहिँ ॥९५॥

निराकार निज रूप है, प्रेम प्रीति से सेव ।
जो चाहै आकार तूँ, साधू परतछ देव ॥९६॥

जा सुख को मुनिवर रटैं, सुर नर करैं बिलाप ।
सो सुख सहजै पाइये, संतन सेवत आप ॥९७॥

कोटि कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि करि धाम ।
जब लगि संत न सेवई, तब लगि सरै न काम ॥९८॥

आसा बासा संत का, ब्रह्मा लखै न बेद ।
षट दर्सन[5] खटपट करै, बिरला पावै भेद ॥९९॥

---

(१) हिजड़े जो बादशाही महल में काम करते थे और बड़ी कदर से रक्खे जाते थे । (२) मे । (३) दंड । (४) सरीखा, समान । (५) छवो शास्त्र ।

भेष का अंग

...त तिलक तिहुँ लोक में, सत्त नाम निज सार।
...न कबीर मस्तक दिया, सोभा अमित अपार ॥ १ ॥
तत्व तिलक की खानि है, महिमा है निज नाम।
अछै नाम वा तिलक का, रहै अछय बिस्राम ॥ २ ॥
तत्व तिलक माथे दिया, सुरति सरवनी कान।
करनी कंठी कंठ में, परसा पद निर्बान ॥ ३ ॥
मन माला तन मेखला, भय की करै भभूत।
...लख मिला सब देखता, सो जोगी अवधूत ॥ ४ ॥
...न को जोगी सब करै, मन को बिरला काय।
सहजै सब सिधि पाइये, जो मन जोगी होय ॥ ५ ॥
हम तो जोगी मनहिँ के, तन के हैं ते और।
मन को जोग लगावते, दसा भई कछु और ॥ ६ ॥
भर्म न भागा जीव का, बहुतक धरिया भेख।
सतगुरु मिलिया बाहिरे, अंतर रहि गइ रेख ॥ ७ ॥

बेहद का अंग

...हद अगाधी पीव है, ये सब हद के जीव।
जे नर राते हद्द से, कधी न पावैं पीव ॥ १ ॥
हद में पीव न पाइये, बेहद में भरपूर।
हद बेहद की गम लखै, ता से पीव हजूर ॥ २ ॥
हद्द बँधा बेहद रमै, पल पल देखै नूर।
मनुवाँ तहँ लै राखिया, (जहँ) बाजे अनहद तूर ॥ ३ ॥
हद्द छाड़ि बेहद गया, सुन्न किया अस्थान।
मुनि जन जान न पावहीं, तहाँ लिया बिसराम ॥ ४ ॥

हद छाड़ि बेहद गया, रहा निरन्तर होय।
बेहद के मैदान में, रहा कबीरा सोय ॥ ५ ॥
हद में बैठा कथत है, बेहद की गम नाहिँ।
बेहद की गम होयगी, तब कछु कथना काहिँ ॥ ६ ॥
हद में रहै सो मानवी, बेहद रहै सो साध।
हद बेहद दोऊ तजी, तिन का मता अगाध ॥ ७ ॥
हद बेहद दोऊ तजे, अबरन किया मिलान।
कह कबीर ता दास पर, वारौं सकल जहान ॥ ८ ॥
जहाँ सोक ब्यापै नहीं, चल हंसा वा देस।
कह कबीर गुरुगम गहौ, छाड़ि सकल भ्रम भेस ॥ ९ ॥

असाधु का अंग

कबीर भेष अतीत का, करै अधिक अपराध।
बाहर देखे साध गति, माहीं बड़ा असाध ॥ १ ॥
जेता मीठा बोलवा, तेता साधु न जान।
पहिले थाह दिखाइ करि, औंड़े[1] देसी आन ॥ २ ॥
जज्जल देखि न धीजिये, बग ज्योँ माँड़े ध्यान।
धूरे[2] बैठि चपेटही, योँ लै बूड़ै ज्ञान ॥ ३ ॥
चाल बकुल की चलत है, बहुरि कहावै हंस।
ते मुक्ता कैसे चुगै, परै काल के फंस ॥ ४ ॥
साधू भया तो क्या हुआ, माला पहिरी चार।
बाहर भेष बनाइया, भीतर भरी भँगार ॥ ५ ॥
माला तिलक लगाइ के, भक्ति न आई हाथ।
दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के, चले दुनी[3] के साथ ॥ ६ ॥

---

(१) गहिरे। (२) एक तरह की मोटी घास। (३) दुनियाँ।

दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के, हूआ घोटम घोट।
मन को क्यों नहिँ मूड़िये, जा में भरिया खोट॥ ७॥

मूँड़ मुड़ाये हरि मिलैं, सब कोइ लेहि मुँड़ाय।
बार बार के मूँड़ने, भेड़ बैकुंठ न जाय॥ ८॥

केसन[1] कहा बिगारिया, जो मूँड़ौ सौ बार।
मन को क्यों नहिँ मूड़िये, जा मेँ बिषय बिकार॥ ९॥

मन मेवासी मूँड़िये, केसहिँ मूँड़े काहिँ।
जो कछु किया सो मन किया, केस किया कछु नाहिँ॥१०॥

देखा देखी भक्ति का, कबहुँ न चढ़सी रंग।
बिपति पड़े पर छाड़सी, ज्योँ केंचुरी भुजंग॥११॥

ज्ञान सँपूरन ना बिधा, हिरदा नाहिँ छिदाय।
देखा देखी पकरिया, रंग नहीँ ठहराय॥१२॥

बाँबी कूटैं बावरे, साँप न मारा जाय।
मूरख बाँबी ना डसै, सर्प सबन को खाय॥१३॥

आप साधु करि देखिये, देखु असाधु न कोय।
जा के हिरदे गुरु नहीँ, हानि उसी की होय॥१४॥

खलक मिला खाली रहा, बहुत किया बकवाद।
बाँझ झुलावै पालना, ता मेँ कौन सवाद॥१५॥

जो बिभूति साधुन तजी, तेहि बिभूति लपटाय।
जौन बवन करि डारिया, स्वान स्वादि करि खाय[2]॥१६॥

स्वाँग पहिरि सोहदा भया, दुनिया खाई खूँदि।
जा सेरी[3] साधू गया, सो तो राखी मूँदि॥१७॥

भूला भसम रमाइ के, मिटी न मन की चाहि।
जौ सिक्का नहिँ साच का, तौ लगि जोगी नाहिँ॥१८॥

---

(१) बाल। (२) जिस माया को सच्चे साधु ने त्याग किया उसमें असाधु लपटता है जैसे कुत्ता कै की हुई चीज़ को मज़े के साथ खाता है। (३) रास्ता।

धारन तो दोऊ भली, गिरही कै बैराग।
गिरही दासातन करै, बैरागी अनुराग ॥ ४ ॥
बैरागी बिरक्त भला, ग्रेही चित्त उदार।
दोउ बातों खाली पड़ै, ता को वार न पार ॥ ५ ॥

अष्ट दोष वा बिकारी अंग

१—काम का अंग

कामी का गुरु कामिनी, लोभी का गुरु दाम।
कबीर का गुरु संत है, संतन का गुरु नाम ॥ १ ॥
सहकामी दीपक दसा, सोखै तेल निवास।
कबीर हीरा संत जन, सहजै सदा प्रकास ॥ २ ॥
कामी कुत्ता तीस दिन, अंतर होय उदास।
कामी नर कुत्ता सदा, छः ऋतु बारह मास ॥ ३ ॥
कामी क्रोधी लालची, इन से भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥ ४ ॥
भक्ति बिगारी कामियाँ, इन्द्री केरे स्वाद।
हीरा खोया हाथ से, जन्म गँवाया बाद ॥ ५ ॥
कामी लज्जा ना करै, मन माहीं अहलाद।
नींद न माँगै साथरा[1], भूख न माँगै स्वाद ॥ ६ ॥
कामी कबहुँ न गुरु भजै, मिटै न संसय सूल।
और गुनन सब बक्सिहौं, कामी डार न मूल ॥ ७ ॥
काम क्रोध सूतक सदा, सूतक लोभ समाय।
सील सरोवर न्हाइये, तब यह सूतक जाय ॥ ८ ॥

---

(१) बिछौना।

जहाँ काम तहँ नाम नहिँ, जहाँ नाम नहिँ काम।
दोनोँ कबहूँ ना मिलैँ, रबि रजनी इक ठाम ॥ ९ ॥
नारि पुरुष सबही सुनो, यह सतगुरु की साखि।
बिष फल फले अनेक हैँ, मत कोइ देखो चाखि ॥१०॥
जिन खाया सोई मुआ, गन गँधर्ब बड़ भूप।
सतगुरु कहैँ कबीर से, जग में जुगति अनूप ॥११॥
कामी तो निर्भय भया, करै न काहू संक।
इंद्री केरे बस परा, भुगतै नरक निसंक ॥१२॥
कबीर कामी पुरुष का, संसय कबहुँ न जाय।
साहिब से अलगा रहै, वा के हिरदे लाय[1] ॥१३॥
कामी अमी न भावई, बिष को लेवै सोधि।
कुबुधि न भाजे जीव की, भावै ज्यों परमोधि ॥१४॥
कहता हूँ कहि जात हूँ, समझै नहीं गँवार।
बैरागी गिरही कहा, कामी वार न पार ॥१५॥
कामी कर्म की केंचली, पहिरि हुआ नर नाग।
सिर फोरै सूझै नहीं, कोइ पूरबला भाग ॥१६॥
काम कहर असवार है, सब को मारै धाय।
कोइक हरिजन ऊबरा, जा के नाम सहाय ॥१७॥
केता बहता बहि गया, केता बहि बहि जाय।
ऐसा भेद बिचारि कै, तू मति गोता खाय ॥१८॥
काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि घट में खान।
कहा मूरख कहा पंडिता, दोनों एक समान ॥१९॥
काम काम सब कोइ कहै, काम न चीन्है कोय।
जेती मन की कलपना, काम कहावै सोय ॥२०॥

---

(१) आग।

आपा मेटे पिउ मिलै, पिउ में रहा समाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कहै तो को पतियाय॥ ७॥
ऊँचे पानी ना टिकै, नीचे ही ठहराय।
नीचा होय सो भरि पिवै, ऊँचा प्यासा जाय॥ ८॥
नीचे नीचे सब तरे, जेते बहुत अधीन।
चढ़ि बोहित[1] अभिमान की, बूड़े ऊँच कुलीन॥ ९॥
सब तें लघुताई भली, लघुता तें सब होय।
जस दुतिया को चन्द्रमा, सीस नवै सब कोय॥१०॥
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजौं आपना, मुझसा बुरा न होय॥११॥
कबीर सब तें हम बुरे, हम तें भल सब कोय।
जिन ऐसा करि बूझिया, मित्र हमारा सोय॥१२॥

६—दया का अंग

दया भाव हिरदे नहीं, ज्ञान कथै बेहद्द।
ते नर नरकहिं जाहिंगे, सुनि सुनि साखी सब्द॥ १॥
दाया दिल में राखिये, तू क्यों निरदै होय।
साईं के सब जीव हैं, कीड़ी कुंजर सोय॥ २॥
हम रोवैं संसार को, रोय न हम को कोय।
हम को तो सो रोइहै, जो सबद-सनेही होय॥ ३॥
बैरागी ह्वै गेह तजि, पग पहिरै पैजार।
अंतर दया न ऊपजे, घनी सहैगा मार॥ ४॥

७—साच का अंग

साच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जा के हिरदे साच है, ता हिरदे गुरु आप॥ १॥

---

(१) नाव।

साईं से साचा रहौ, साईं साच सुहाय।
भावै लम्बे केस रखु, भावै घोट मुँड़ाय॥ २॥
साचे स्राप न लागई, साचे काल न खाय।
साचे को साचा मिलै, साचे माहिँ समाय॥ ३॥
साचै सौदा कीजिये, अपने जिव में जानि।
साचै हीरा पाइये, झूठै मूलहुँ हानि॥ ४॥
जो तू साचा बानिया, साची हाट लगाय।
अंदर झाड़ू देइ कै, कूड़ा दूरि बहाव॥ ५॥
तेरे अंदर साच जो, बाहर नाहिँ जनाव।
जाननहारा जानिहै, अंतरगति का भाव॥ ६॥
जा की साची सुरत है, ता का साचा खेल।
आठ पहर चौंसठ घरी, साईं सेती मेल॥ ७॥
साच बिना सुमिरन नहीं, भय बिन भक्ति न होय।
पारस में परदा रहै, कंचन केहि विधि होय॥ ८॥
अब तो हम कंचन भये, तब हम होते काच।
सतगुरु की किरपा भई, दिल अपने का साच॥ ९॥
कंचन केवल हरि भजन, दूजा काच कथीर।
झूठा जाल जँजाल तजि, पकड़ा साच कबीर॥१०॥
प्रेम प्रीति का चोलना पहरि कबीरा नाच।
तन मन ता पर वारहूँ, जो कोइ बोलै साच॥११॥
साच सबद हिरदे गहा, अलख पुरुष भरपूर।
प्रेम प्रीति का चोलना, पहिरे दास हजूर॥१२॥
साधू ऐसा चाहिये, साची कहै बनाय।
कै टूटै कै फिरि जुरै, कहे बिन भरम न जाय॥१३॥
जिन नर साच पिछानियाँ, करता केवल सार।
सो प्रानी काहे चलै, झूठे कुल की लार॥१४॥

पर नारी पैनी छुरी, मत कोइ लावो अंग।
रावन के दस सिर गये, पर नारी के संग ॥ ८ ॥
पर नारी पैनी छुरी, बिरला बाचै कोय।
ना वहि पेट संचारिये, (जो) सर्व सोन की होय ॥ ९ ॥
पर नारी का राचना, ज्यों लहसुन की घ्रान[1]।
कोने बैठि के खाइये, परगट होय निदान ॥१०॥
पर नारी के राचने, औगुन है गुन नाहिँ।
खार समुंदर माछरी, केती बहि बहि जाहिँ ॥११॥
पर नारी पर सुंदरी, जैसे सूली साल।
नित कलेस भुगतै सही, तहू न छोड़ै खाल ॥१२॥
दीपक सुन्दर देखि कै, जरि जरि मरै पतंग।
बढ़ी लहर जो बिषय की, जरत न मोड़ै अंग ॥१३॥
नारि पराई आपनी, भोगै नरकै जाय।
आग आग सब एक सी, हाथ दिये जरि जाय ॥१४॥
जहर पराया आपना, खाये से मरि जाय।
अपनी रच्छा ना करै, कह कबीर समझाय ॥१५॥
कूप पराया आपना, गिरै बूड़ि जो खाय।
ऐसा भेद बिचारि कै, तू मत गोता खाय ॥१६॥
छुरी पराई आपनी, मारे दर्द जो होय।
बहु बिधि कहूँ पुकारि कै, कर छूवो मत कोय ॥१७॥
नारी निरखि न देखिये, निरखि न कीजै दौर।
देखेही तेँ बिष चढ़ै, मन आवै कछु और ॥१८॥
जो कबहूँ कै देखिये, बीर बहिन के भाय।
आठ पहर अलगा रहै, ता को काल न खाय ॥१९॥

---

(१) दुर्गंध।

र्व सोने की सुन्दरी, आवै बास सुबास।
जो जननी होय आपनी, तऊ न बैठै पास ॥२०॥

नारि नसावै तीन गुन, जो नर पासे होय।
भक्ति मुक्ति निज ध्यान में, पैठि न सकै कोय ॥२१॥

नाय रोय हँस खेलि के, हरत सबन के प्रान।
ह कबीर या घात को, समझै संत सुजान ॥२२॥

नारी नदी अथाह जल, बूड़ि मुवा संसार।
ऐसा साधू ना मिला, जा सँग उतरूँ पार ॥२३॥

गाय भैंस घोड़ी गधी, नारि नाम है तास।
जा मंदिर में यह बसैं, तहाँ न कीजे बास ॥२४॥

नारि रचंते पुरुष हैं, पुरुष रचंती नारि।
पुरुष पुरुष तें राचते, ते बिरले संसार ॥२५॥

नारि कहाँ की नाहरी, नख सिख से यह खाय।
जल बूड़ा तो ऊबरै, भग बूड़ा बहि जाय ॥२६॥

भग भोगे भग ऊपजे, भग तें बचै न कोय।
कह कबीर भग तें बचै, भक्त कहावै सोय ॥२७॥

सेवक अपना करि लई, आज्ञा मेटै नाहिं।
भग मंतर दै गुरु भई, सिष हो सबै कमाहिं ॥२८

कबीर नारि की प्रीति से, केते गये गड़ंत।
केते औरो जाहिंगे, नरक हसंत हसंत ॥२

फाटे[1] कानों वाघिनी, तीन लोक को खाय।
जीवत खाय कलेजरा, मुए नरक लै जाय ॥

नारी नाहीं नाहरी, करै नैन की चोट।
कोइ कोइ साधू ऊबरै, लै सतगुरु की ओट।

(१) फटकारे हुए।

कौन कसै अरु कौन कसावै, कौन जो लेइ छुड़ाय।
यह संसा जिव ह्वै रही, साधु कहौ समझाय ॥४१॥
काल कसै अरु कर्म कसावै, सतगुरु लेइ छुड़ाय।
कहै कबीर बिचारि कै, सुनो संत चित लाय ॥४२॥
माटी में माटी मिली, मिली पौन से पौन।
मैं तोहि बूझौं पंडिता, दो में मूवा कौन ॥४३॥
कुमति हती सो मिटि गई, मिट्यो बाद हंकार।
दूनौं का मरना भया, कहै कबीर बिचार ॥४४॥
जूआ चोरी मुखबिरी, ब्याज घूस पर नारि।
जो चाहै दीदार को, ऐसी बस्तु निवारि ॥४५॥
करता दीखै कीरतन, ऊँचा करि के तुंड।
जानै बूझै कछु नहीं, योँ ही आधा रुंड ॥४६॥
मो में इतनी सक्ति कहँ, गाओं गला पसार।
बंदे को इतनी घनी, पड़ा रहै दरबार ॥४७॥
रचनहार को चीन्हि ले, खाने को क्या रोय।
दिल मंदिर में पैठि करि, तानि पिछौरा सोय ॥४८॥
सब से भली मधूकरी, भाँति भाँति का नाज।
दावा काहू का नहीं, बिना बिलायत राज ॥४९॥
भौसागर जल बिष भरा, मन नहिँ बाँधै धीर।
सबद-सनेही पिउ मिला, उतरा पार कबीर ॥५०॥
हंसा बगुला एक रँग, मानसरोवर माहिँ।
बगुला ढूँढ़ै माछरी, हंसा मोती खाहिँ ॥५१॥
तन संदूक मन रतन है, चुपके दे हठ ताल।
गाहक बिना न खोलिये, पूँजी सबद रसाल ॥५२॥
हीरा गुरु का सबद है, हिरदे भीतर देख।
बाहर भीतर भरि रहा, ऐसा अगम अलेख ॥६३॥
कै खाना कै सोवना, और न कोई चीत।
सतगुरु सबद बिसारिया, आदि अंत का मीत ॥५४॥

याहि उदर के कारने, जग याच्यो निसि जाम ।
स्वामीपन सिर पर चढ़्यो, सर्यो न एको काम ॥५५॥
परतिष्ठा का टोकरा, लीये डोलै साथ ।
सत्त नाम जाना नहीं, जनम गँवाया बाद ॥५६॥
कलि का स्वामी लोभिया, मनसा रहा बँधाय ।
रुपया देवै ब्याज पर, लेखा करत दिन जाय ॥५७॥
कलि का स्वामी लोभिया, पीतरि धरै खटाइ ।
राज दुवारे यों फिरै, ज्यों हरियाई गाइ ॥५८॥
राज दुवारे साधुजन, तीनि बस्तु को जाय ।
कै मीठा कै मान को, कै माया की चाय ॥५९॥
कबीर कलिजुग कठिन है, साधु न मानै कोय ।
कामी क्रोधी मस्खरा, तिन कौ आदर होय ॥६०॥
सतगुरु की साची कथा, कोई सुनही कान ।
कलिजुग पूजा डिम्भ की, बाजारी को मान ॥६१॥
देखन को सब कोइ भला, जैसा सीत का कोट ।
देखत ही ढहि जायगा, बाँधि सकै नहिं पोट ॥६२॥
पद गावै मन हरखि कै, साखी कहै अनन्द ।
तत्त मूल नहिं जानिया, गल में परिगा फंद ॥६३॥
नाचै गावै पद कहै, नाहीं गुरु से हेत ।
कह कबीर क्यों नीपजै, बीज बिहूना खेत ॥६४॥
चतुराई क्या कीजिये, जो नहिं पदहिं समाय ।
कोटिक गुन सुवना पढ़ै, अंत बिलाई खाय ॥६५॥
ब्रह्महिं तें जग ऊपजा, कहत सयाने लोग ।
ताहि ब्रह्म के त्याग बिनु, जगत न त्यागन जोग ॥६६॥
ब्रह्म जगत का बीज है, जो नहिं ता को त्याग ।
जगत ब्रह्म में लीन है, कहहु कौन बैराग ॥६७॥

नेत नेत जेहिं बेद कहि, जहाँ न मन ठहराय।
मन बानी की गमि नहीं, ब्रह्म कहा किन आय ॥६८॥
एक कर्म है बोवना, उपजै बीज बहूत।
एक कर्म है भूँजना, उदय न अंकुर सूत ॥६९॥
चाँद सुरज निज किरनि को, त्याग कवन बिधि कीन।
जा की किरनी ताहि में, उपजि होत पुनि लीन ॥७०॥
जब दिल मिला दयाल से, फाँसी गई बिलाय।
मोहिं भरोसा इष्ट का, बंदा नरक न जाय ॥७१॥
जब दिल मिला दयाल से, तब कछु अंतर नाहिं।
पाला गलि पानी भया, यों हरिजन हरि माहिं ॥७२॥
कबीर मोह पिनाक[1] जग, गुरु बिनु टूटत नाहिँ।
सुर नर मुनि तोरन लगे, छुवत अधिक गरुआहि ॥७३॥
साधू ऐसा चाहिये, ज्यों मोती में आब।
उतरे तें फिरि नहिं चढ़ै, अनादर होइ रहाब ॥७४॥
मूरख लघु को गरु कहैं, लघु गरु कहैं बनाय।
यह अबिचारी देखि कै, कहत कबीर लजाय ॥७५॥
कबीर निगुरे नरन को, संसय कबहुँ न जाय।
संसय छूटै गुरु कृपा, तासु बिमुख जहँड़ाय[2] ॥७६॥
कबीर जो गुरु-बेमुखी, (तेहि) ठौर न तीनिउँ लोक।
चौरासी भरमत फिरै, भोगै नाना सोक ॥७७॥
गुरू झरोखे बैठि के, सब का मुजरा लेइ।
जैसी जा की चाकरी, तैसा ता को देइ ॥७८॥
नाम रतन धन संत पहँ, खान खुली घट माहिँ।
सेंतमेंत ही देत हौं, गाहक कोई नाहिँ ॥७९॥

॥ इति ॥

---

(१) धनुष। (२) ठगाय।